चरित्र चिन्तन

ब्रह्मचर्य्य और आत्म-सयमपर विचार और
उसके साधक उपायोंका दिग्दर्शन

लेखकः—

छविनाथ पाण्डेय बी० ए०, एल्० एल० बी०
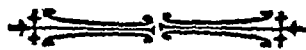
प्रकाशकः—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
हरिसन रोड, कलकत्ता

प्रथम संस्करण	श्रावण	मूल्य
२०००	१९८१	१)

प्रकाशक—
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर—
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६ हरिसन रोड, कलकत्ता

मुद्रकः—
किशोरीलाल केडिया
वणिक् प्रेस,
१, सरकार लेन, कलकत्ता

विषय-सूची

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी माला—४२

रामचरित मानसकी भूमिका

लेखक—

साहित्य-मर्म्मज्ञ अध्यापक श्रीरामदास गौड़ एम० ए०

इस ग्रन्थमें गोसाईं तुलसीदास कृत

रामचरित मानस

की

विषद व्याख्या की गई है। व्याकरण, शंका-समाधान इत्यादिके साथ ही एक वृहद् मानस-कोष भी दिया गया है। हिन्दी साहित्यमें ऐसा अनूठा ग्रन्थ अभीतक नहीं छपा है। प्रत्येक रामायण-प्रेमी तथा साहित्यानुरागीको इसकी एक एक प्रति अवश्य रखनी चाहिये। ग्रन्थ लगभग ५०० पृष्ठका होगा।

वक्तव्य

फिलाडेल्फियाके वीर पब्लिशिङ्ग कम्पनीद्वारा प्रकाशित औट-फार-कोरेक्टर (Out for character) नामक पुस्तिकाके कतिपय निबन्धोंके आधारपर पं० छविनाथजी पांडेयने यह पुस्तक लिखी है। मूल पुस्तकमें अमरीकाके बड़े बड़े लोगोंके छब्बीस लेख केवल ब्रह्मचर्यपर संगृहीत हैं। इनमेंसे प्रत्येक लेख एक ही विषयपर लिखे जानेके कारण शब्दों और विचारोंकी अत्यन्त पुनरावृत्ति है। भाव भी अनिवार्य्यतः पाश्चात्य ही हैं। इसीलिये अनुवाद होता तो अत्यन्त भद्दा हो जाता। पाण्डेयजीने अनुवाद न करके इन लेखोंके आधारपर लिखा और भाव भी भारतीय रखे, यह अच्छा ही हुआ। मूलमें विचारोंकी अनेक पुनरुक्तियोंसे बचना कठिन था, क्योंकि प्रत्येक लेखकी विशेष छाया भी लेनी थी। गम्भीर और ठोस विषयके पढ़नेवाले शायद पुनरुक्तियोंसे घबड़ा जायं, पर नवयुवकोंके हाथोंमें यह पुस्तक साहित्यके नमूनेकी तरह नहीं रखी जा रही है। यह पुस्तक उनके लिये उस शिक्षकका काम करेगी, जो एक ही विषयको बार बार भिन्न भिन्न पक्षोंसे भिन्न भिन्न रूपोंमें उपस्थित करता है और नवयुवकके कानोंमें पवित्र शिक्षाको दुहराया करता है। "कभी किसी अवसरमें तो मनपर दृढ़ प्रभाव पड़ ही जायगा" उसकी यह आशा सर्वथा निराधार नहीं होती। पाश्चात्य सभ्यताके नवयुवक राष्ट्र अमरीकाको यदि ब्रह्मचर्य्यकी शिक्षाकी आवश्यकता प्रतीत होती है, तो पुनर्जीवन और नवजीवनप्राप्त

भारतवर्षके लिये, आत्मसंयम और ब्रह्मचर्य्य जिसकी सच्ची मीरास है, यह शिक्षा तो अनिवार्य्य है। इसपर जितनी पुस्तकें निकलें उचित है। यदि नवयुवकोंको इससे लाभ पहुंचा तो पुस्तकका लिखा जाना और प्रकाशित होना सार्थक हो जायगा।

श्रीमद्गुरा
१५।१०।८० } रामदास गौड़

चरित्र चिन्तन

पहला विचार

जीवनका जहाज—आत्मसंयम

सामने अगाध सागर पड़ा है। इसके वारापारका कोई पता नहीं। जहांतक दृष्टि काम कर सकती है, जल ही जल दिखायी देता है। तरल तरंगें उठ रही हैं। इस भीषण सागरमें एक जहाज चला जा रहा है। न तो उसपर पतवार है, न मस्तूल है और न पाल है। रास्ता देखनेके लिये कुतुबनुमा यन्त्र भी नहीं है। तूफ़ान और लहरोंके सहारे चला जा रहा है। हवाके झोंके जिस ओर ले जाते हैं, उधर ही जाता है। कहीं न कहीं जहाजका अन्त अवश्य होगा। कहीं न कहीं टकराकर चूर चूर हो जायगा।

यह संसार क्या है? अगाध सागर है, अगम्य है, और वारा-पार-हीन है। हमारी जीवन-नौका इसमें पड़ी हुई है। हमें कहीं एक ठौरपर पहुंचना है। विपत्ति और बाधारूपी तरंगें रह रहकर हमपर थपेड़े मारती हैं। हम सचेत नहीं हैं, सतर्क नहीं हैं, विता

किसी साधनके चल रहे हैं, भाग्यके भरोसे अपनेको छोड़ दिया है, न हममें बल है, न बुद्धि है, न धैर्य्य है, न साहस। आत्मसंयमका भी हममें सर्वथा अभाव है। अब हमारी क्या दशा होगी? हमारे देशके कितने भव्यरत्न, कितने ही मातृभूमिके लाल अकालमें ही रसातलको चले जाते हैं, क्योंकि उन्होंने इस संसारकी गतिको समझा नहीं। सम्हल सम्हलकर चलना नहीं सीखा। भाग्यके भ्रमरावर्त्तमें उन्होंने अपनेको छोड़ दिया और बिना हाथ-पैर डुलाये ही किनारेतक पहुंचना चाहते थे, परन्तु भवँरने उन्हें ले जाकर एक पथरीली चट्टानपर पटक दिया और वे वहीं चूर चूर हो गये।

आज हम उन्हीं उपायोंका उल्लेख करने जा रहे हैं। हम चाहते हैं कि नवयुवकोंके सामने कुछ प्रत्यक्ष बातें रखकर उन्हें बतला दें कि इस संसारमें सफल यात्री बननेके लिये तुम्हें क्या करना चाहिये, किस मार्गपर चलना चाहिये तथा किन किन साधनोंसे काम लेना चाहिये। हम समझते हैं कि इस तरहकी बातें सब सुनना चाहते हैं। पर जो लोग आदिसे ही अपनेको सर्वज्ञ मान बैठे हैं अथवा हार मानकर बैठ गये हैं, उन्हें हमारी बातें न जचेंगी। हम उनके लिये यह लिख भी नहीं रहे हैं।

हम कुछ उद्देश्य लेकर इस संसारमें आये हैं। ईश्वरने हमें इतनी उत्तम योनिमें व्यर्थ ही उत्पन्न नहीं किया है। हम उसका सन्देश लेकर इस संसारमें आये हैं, उस संदेशको हमें घर घर

फैलाना है। इस कामको लेकर हम चलते हैं। हमें शत्रु और मित्र दोनोंका सामना करना पड़ता है। हम संग्रामसे नहीं डरते। युद्ध करनेसे हम नहीं घबराते। हम चाहते हैं कि हमारा शत्रु बलवान हो, साहसी हो, जरा उसपर हम अपनी शक्तिकी परीक्षा करें। हम अपने काममें जितना अधिक प्रयास करेंगे, उतनी ही प्रसन्नता हमारी आत्माको मिलेगी, उतना ही अधिक सन्तोष हमारे मालिकको होगा। हम कायरसे लड़ना नहीं चाहते। एक वीर था, कुश्ती लड़नेका उसे बड़ा शौक़ था। बल भी उसमें अपार था। छोटी मोटी कुश्तियोंमें उसे कुछ भी मजा न आता था। वह प्रायः यही कहा करता था कि आज तो देहकी पीड़ा भी नहीं गयी। लड़ते लड़ते जबतक दम न आ जाय तो वह लड़ना किस कामका? जिसने कलकत्तेका फुटबाल देखा है वह हमारी बातोंको और अच्छी तरह समझ सकता है। कलकत्ता-क्लब और मोहनबागान दो अच्छे क्लब हैं। फुटबालमें सबसे अधिक आनन्द उसी दिन आता है, जिस दिन इन दोनोंका परस्पर खेल होता है। इसमें खेलनेवाले लोग भी उस दिन दूना उत्साह दिखाते हैं। हारें या जीतें, दूना आनन्द मानते हैं।

हम किसी उद्देश्यसे लड़ते हैं। हमारा संग्राम कुछ अभिप्राय रखता है। इसलिये हम सदा लड़ते ही नहीं रहेंगे। जबतक उस उद्देश्यके मार्गकी बाधाएँ हम दूर नहीं कर लेते, हम लड़ते रहेंगे। जिस दिन देख लेंगे कि हमारी लड़ाईका कारण समाप्त हो गया, हम हाथ खींच लेंगे।

यह किंवदन्ती भी कहीं कहीं सुननेमें आती है कि जिस शत्रुको हम हरा देते हैं, उस शत्रुका सारा बल हमारे शरीरमें चला आता है। हमारे पौराणिक वानरवर बालिके विषयमें भी यही कथा प्रचलित है कि सामना होते ही शत्रुका आधा बल उसके शरीरमें चला आता था और यही कारण था कि मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रने उसे पेड़की ओटसे मारा। इस दन्तकथामें भी एक तरहका सार है। मनोविज्ञानके मीमांसकोंने इसमेंसे एक उत्कृष्ट सिद्धान्त निकाला है कि विजयका प्रभाव मनपर ऐसा प्रबल पड़ता है कि वह संग्रामको खेलवाड़सा समझता है। असल बात यह है कि मनुष्यका साहस खुल जाता है, उसका डर भाग जाता है, वह निडर होकर शत्रुपर आक्रमण करता है। यदि हममें काफी शक्ति है और साहसके बल हमने दो चार शत्रुओंको पछाड़ा तो फिर आनाकानीका हममें लेश-तक नहीं रह जायगा। इस तरहके हतोत्साह करनेवाले सभी कण्टक हमसे कोसों दूर भाग जायंगे। हममें केवल दृढ़ता चाहिये।

हमारे अनेक मित्र हैं जिन्हें सिगरेट पीनेकी बुरी लत पड़ गयी थी। सिगरेटसे उन्हें भीषण हानि हुई। उन्होंने संकल्प कर लिया कि सिगरेटको हराम समझकर छोड़ेंगे ही। उनमेंसे कइयोंने छोड़ भी दिया। बातों ही बातोंमें हमने एकसे एक दिन पूछा। कहने लगे, "जिस समय मैंने यह दृढ़ निश्चय किया कि आजसे सिगरेट नहीं छूऊँगा तो निराशाका एक पहाड़ आकर सामने

खड़ा हो गया। तब मैंने सोचा, यदि बिना सिगरेटके काम न चला, यदि पेटमें वायुका प्रकोप उत्पन्न हुआ, यदि सवेरे साफ़ दस्त न हुआ, यदि दफ्तरमें काम करनेके समय थकावट मालूम होने लगी तो एकाध चिलम तम्बाकू पी लूँगा। प्रतीकारकी इस कल्पनाका उलटा फल होता था। हर समय उसी सिगरेट न पीने और चिलम पीनेपर ध्यान रहता था। मानसिक वेदना बढ़ जाती थी, बेचैन हो जाता था। हफ्तों इसी तरहकी परेशानी बनी रही। फिर मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि प्राण ही क्यों न चले जायं, पर मैं सिगरेट अथवा सिगरेटकासा असर करने-वाली कोई वस्तु नहीं छूऊंगा। दो चार दिनतक कष्ट तो अवश्य हुआ, पर उस परेशानी और मानसिक यातनाका सामना नहीं करना पड़ा।"

इस तरहकी यातनाओंमें भी एक तरहका आनन्द मिलता है। चित्तमें सन्तोष रहता है, हृदयमें शान्ति रहती है कि इसका परिणाम सुखमय है। एक आदमी फोड़ेकी कठोर यातनासे कराह रहा है। डाक्टर उसे लपलपाती छुरी दिखाकर कहता है, "मैं फोड़ेको चीरूंगा। तू हिले डोले नहीं, इसलिये तुझे बेहोशीकी दवा सुंघाऊंगा।" मरीज जानता है कि फोड़ा चीरनेमें असह्य वेदना होती है। बेहोशीमें रहनेसे कभी कभी चित्त बिगड़ जाता है, लोग मर जाते हैं। इतनेपर भी वह डाक्टरकी ओर कृतज्ञता-पूर्ण नेत्रोंसे देखता है। कष्टमें भी उसे सन्तोष है, क्योंकि वह जानता है कि इसको सहकर हम भारी दुःखसे पार हो जायँगे।

एक बार जो मनुष्य इस तरहके संग्राममें पड़ जाता है और सब कष्टोंको झेलकर उसे पार कर जाता है, उसमें असीम साहस और धैर्य्यका प्रादुर्भाव हो जाता है। फिर वह हर तरहकी कठिनाइयोंको आसान समझता है। वह विना किसी विघ्न-बाधाके ख्यालके कामका भार अपने सिरपर उठा लेता है। उस मार्गमें वह अपनेको प्रवीण समझने लगता है और हर तरहकी चालोंका मुकाबि[illegible]र सकता है। उसे विश्वास है कि 'हम इसको पार क[illegible] लेंगे, हमारा मार्ग कोई नहीं रोक सकता, जिसने साहसकर एक बार गंगाजीको पार किया फिर वह अपनेको पक्का तैराक समझने लगता है, किसी भी ताल-तलैयामें उतरनेसे वह नहीं डरता। यदि कहीं वह भवँर या चक्करके वीच फँस भी गया तो घवराता नहीं। अपने आपेपर वह कावू रखता है और मनसे कहता है,"हृदयमें धीरज धर, तेरा तो जन्म ही इसीलिये हुआ है कि तू एकके बाद दूसरी विपत्तियां झेलता रहे। फिर तू क्यों घवराता है? इससे भी कठिन कठोर विपत्ति तेरे लिये कुछ नहीं है।"

यह तितिक्षाके भाव आत्माको उच्च बनाते हैं, आत्मामें साहस भरते हैं और मनुष्यको दृढ़ और स्थिर बनाते हैं। साधारण खेल-तमाशोंमें इस तरहकी बातोंसे असीम लाभ होते देखा गया है। फिर जीवनके इस महत्वपूर्ण संग्राममें इसका भारी असर क्यों न पड़ेगा? महात्मा गांधीका जीवन-वृत्तान्त हमलोगोंके सामने है। उनकी सफलताकी कुंजी इसीमें है। वे साहसी हैं, दृढ़

हैं, सत्यप्रतिज्ञ हैं। जो निश्चय उन्होंने हृदयमें किया, उससे एक तिल भी पीछे नहीं हटते। जो अड़े सो अड़े। प्राण भले ही चले जायें, पर संसारमें ऐसी कोई शक्ति नहीं जो उन्हें अपनी प्रतिज्ञा-से हटा सके। यही कारण उनकी सफलताका है।

कोई काम उठानेके पहले आदमीको अपनी शक्ति समझ लेनी चाहिये। उसको वहींसे आरम्भ करना चाहिये, जहांसे वह आसानीसे चल सकता है। यदि वह समझता है कि अमुक काम इतना कंटकाकीर्ण और विपत्तियोंसे भरा है कि लाख यत्न करने-पर भी वह उसे पार नहीं कर सकता तो उसे उसमें नहीं कूदना चाहिये। पहले ही असफलताका टीका लगाकर चित्तको हताश करना उचित नहीं। हलका काम हाथमें लो, पर लो दृढ़ताके साथ। इसी मंसूबेसे लो कि कितनी आफत विपत क्यों न आये, हम पीछे हटनेके नहीं, हम इसे अन्ततक पहुंचाकर ही चैन लेंगे। इस तरह चाहे कितना ही हलका काम क्यों न हो, मनुष्यका साहस बढ़ता है, उसमें बल आता है और भविष्यमें और कठिन कठिन काम करनेके लिये भी प्रस्तुत रहता है। जिन रपममूर्तिने लोहेकी साँकर तोड़ी थी, उनसे इसका रहस्य पूछिये। छोटी छोटी वस्तुओंके तोड़नेसे उनका साहस बढ़ता गया और उन्होंने तोड़नेका क्रम जारी रखा। एक दिन वह आया कि मोटीसे मोटी साँकर तोड़ सके।

बुरी आदतोंसे पिण्ड छुड़ानेके लिये भी इसी तरह साहस और सहनशीलतासे काम लेना पड़ेगा। यदि हम चिड़चिड़े

मिजाजके हैं और दूसरोंकी वातें हमें नहीं भातीं,और हम रह रह-कर विगड़ जाते हैं तो हमें चाहिये कि हम पहले छोटी छोटी चिढ़नेवाली वातों को सह लिया करे। इसी तरह आदत पड़ती जायगी और धीरे धीरे सहनशीलताकी मात्रा-चढ़ती जायगी। फिर एक दिन वह आयेगा कि हम वुरीसे वुरी वात सुनकर भी नहीं चिढ़ेंगे, चुपचाप सह लेंगे।

इस तरह साधारण कामोमे सफलता पा लेनेपर आत्मामें विश्वास हो जाता है,मनुष्य अपना वल तथा,पौरुष समझने लगता है, चरित्र-वल उसका गठ जाता है और वह साहस, दृढ़ता तथा विश्वासके साथ वड़े वड़े कामोंमें हाथ डालता है। वह घवराता नहीं, वह हिचकता नहीं, वह अधीर नहीं होता। मुस्कुराता हुआ वह उसकी ओर वढ़ता है मानो वह सदा उसे करता आया है, उसके जीवनका यह साधारण काम है।

हमें कभी भी हताश नहीं होना चाहिये, धक्का खाते रहना चाहिये और अपने मार्गपर आगे वढ़ते जाना जाहिये। सव कामोंकी अवधि अवश्य होती है, पर यदि अवधिके भीतर हम सफल नहीं हो सके तो हमें मुंह नहीं मोड़ लेना चाहिये। पहले अभ्यासकी अवधि नियत कर लो। इतने कम दिनोंकी अवधि रखो, जिससे तुम घवरा न जाओ। अवधिके अन्ततक पहुचनेपर तुम फिर अवधि वढ़ा दो। इस प्रकार अवधिको धीरे धीरे वढ़ाते जाओ और अपना अभ्यास दृढ़से दृढ़तर करते जाओ। जवतक तुम यह न समझ लो कि अव किसी भी अवस्थामें हम इस

तरफसे किसी दूसरी ओर आकर्षित नहीं हो सकते, उससे मुंह मत मोड़ो।

एक आदमी नमक खाना छोड़ना चाहता था। जब कभी वह इस बातका स्मरण करता तो नमक छोड़ना उसे पहाड़पर चढ़नेसे भी कठिन प्रतीत होता। निदान उसने पहले सप्ताहके लिये नमक छोड़ दिया। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, इस तरह वह सप्ताह बीता। उसने दो दिनकी अवधि और बढ़ा दी, चार दिन की और सप्ताह भरकी, पखवारे की, मास की। इस तरह धीरे धीरे उसका अभ्यास बढ़ता गया और उसने नमक खाना छोड़ दिया।

यह एक उदाहरण है, पर इसकी तहमें जाइये तो आपको मालूम हो जायगा कि कितना भारी सिद्धान्त इसकी आड़में छिपा है। यदि इस तरह काम किया जाय तो असफल होनेकी कोई गुंजायश नहीं दिखायी देती।

दूसरा विचार

जीवन तरंग

टोरण्टो विश्वविद्यालयके डाकृर जेम्स ए० मेकूडानल्ड "उत्तरी अमरीकाके विचार" (North American idea) नामक पुस्तकमें लिखते हैं:—"एक दिनकी बात है, मैं अपने कमरेमें खड़ा खिड़कीसे सिर निकालकर बाहरकी ओर झांक रहा था। मेरे मकानके सामने ठीक एक सुदीर्घ और सुन्दर मकान था। सड़ककी तरफ खिड़कियां कटी थीं और खिड़कियोंमें साज लगे थे और एक तरफसे दूसरी तरफ रस्सी बँधी थी। मैंने देखा कि दो तल्लेसे एक युवा पुरुष खिड़कीसे सिर निकालकर नीचेकी ओर झांक रहा है और उसी डोरीपर अपने हाथोंसे सहारा ले रखा है। उसी समय अखबार बेचनेवाला मेरे पास आया। मैंने उससे पूछा, "सामनेके मकानसे जो आदमी डोरीके सहारे इस तरह झांक रहा है, क्या उसे डर नहीं है? डोरीका क्या भरोसा?" मेरी बात सुनकर वह मुस्कुराया और नम्रताके साथ कहने लगा—"महाशय, वह ऐसा मूर्ख नही है कि इस तरह असावधानी करेगा, अवश्य ही सावधान होगा। दो तीन वर्ष पीछेकी बात है, इसी स्थलपर एक दूसरे आदमीने इस तरहकी असावधानी की थी। परिणाम यह हुआ कि डोरी टूट

गयी और वह धड़ामसे नीचे सड़कमें चला आया और प्राण गंवाये।"

उपरोक्त उदाहरणको आधार मानकर अध्यापक महोदय लिखते हैं कि संसारके भौतिक पदार्थोंका शासन एक नियमके आधारपर होता है और उस नियमको 'आकर्षण-शक्ति' कहते हैं। प्रकृतिके निर्माण-क्षेत्रके अन्तर्गत सभी भौतिक पदार्थोंपर यह नियम अपना काम करता है। इससे बचकर कोई निकल नही सकता। मानने, न माननेकी यह परवा नहीं करता, सुनो या न सुनो, यह तो अपनी मुहर अवश्य लगा देगा। जिसने इस नियमको माना, इसके सानुकूल काम किया, उसीने अपना जीवन सफल किया। गुरुत्वाकर्षण सत्य है, उसका प्रभाव अमिट है, इस बातको जिसने स्वीकार किया, उसका तो कल्याण है, पर जो इसकी परवा नहीं करते, जो इसका उल्लंघनकर अथवा इसे कुचलकर चलना चाहते हैं, उनका पतन, उनका नाश अवश्यम्भावी है। इस संसार-यात्रामें वे किसी तरह बचकर नहीं जा सकते। पग पगपर उन्हें हानि उठानी पड़ेगी, हार माननी पड़ेगी, असुविधाओंका सामना करना पड़ेगा। 'गुरुत्वाकर्षणकी शक्ति' का प्रभाव इस संसारके सभी पदार्थोंपर अमिटरूपसे पड़ता है। वह सभी वस्तुओंको अपने चंगुलके अन्दर रखता है। गुरुत्वाकर्षण कहता है कि जिस पदार्थमें अधिक तेज होगा, जो अपने सामनेवाले पदार्थसे अधिक शक्ति रखता होगा, वह बीचवाले पदार्थको अपनी ओर खींच लेगा। बीचवाला पदार्थ कितना ही

सतर्क क्यों न हो, जबतक प्रतिद्वन्द्वीकी शक्तिका सामना करनेका बल या शक्ति उसमें नहीं आजाती, किसी अन्य उपायसे वह उसे परास्त नहीं कर सकता।

गुरुत्वाकर्षणका नियम केवल भौतिक संसारमें ही अपना काम नहीं करता। सदाचारका बन्धन भी इसी आकर्षण-शक्तिके सहारे खड़ा है। सदाचार और अध्यात्मजगतपर भी इसका प्रभाव उसी तरह अमिट और अपरिवर्तनशील है, जिस तरह इसका प्रभाव भौतिक जगत तथा नक्षत्रोंपर अमिट और अपरिवर्तनशील है। नक्षत्रोंकी गति विधिका अनुमान करके देखिये, आपको गुरुत्वाकर्षण शक्तिके प्राबल्य और प्रधानताका पता चल जायगा। एक केन्द्र है, कुछ नक्षत्रोंकी एक मण्डली उसी केन्द्रके चारों ओर मँडला रही है। न जाने कितने हजार वर्षोंसे यह चक्र योंही चल रहा है। कभी किसी तरहका परिवर्तन सुननेमें नहीं आया। एक दिन जो नक्षत्र अपने पथके जिस स्थानपर था, दूसरे चक्रमें उस दिन, उस घड़ी उसे उसी स्थानपर सदा पाइयेगा, इसमें तिलमात्रका भी भेद नहीं पड़ सकता। यह गुरुत्वाकर्षणका प्रभाव है। गुरुत्वाकर्षणका नियम उनसे कुछ कहता नहीं, उन्हें बलात् हाथ पकड़कर खींचता नहीं, पीछेसे गर्दन पकड़कर ठेलता नहीं, अलक्ष्य है, दृष्टिपथसे परे है, फिर भी उसका प्रभाव पड़ता है, उसका काम सदा उसी तरह चला करता है, उसमें जरा भी फेरफार नहीं होता और न होनेकी गुंजायश है। हमने एक हाथमें चुम्बक पत्थर लिया और दूसरेमें लोहेका एक टुकड़ा।

दोनोंको सामने किया। लोहा उछलकर चुम्यक पत्थरसे जा मिलेगा। क्यों? चुम्बकमें लोहेको अपनी ओर खींच लेनेकी शक्ति है। हमने लोहेको हाथसे पकड़ रखा। लोहेकी गति रुक गयी। क्यों? हमारे हाथकी शक्ति चुम्बककी शक्तिसे अधिक बलवती है। हमने दूसरे क्षण अपना हाथ ढीला कर दिया, लोहा उछल-कर चुम्बकसे जा मिला।

किसी नहरके किनारेपर खड़े होकर तमाशा देखिये। सामने-से एक जहाज आ रहा है। उसे रास्ता बदलना है। अभीतक तो जहाज ऊपरकी ओर चढ़ता चला आ रहा था, अब उसे नीचेकी ओर जाना है। देखो,क्या होता है। उधरसे एक मल्लाह आया, उसने जहाजको बगलकी एक चट्टानसे बाँध दिया। बगल-में एक नाला है, उसे खोल दिया। धाँय धाँय शब्द होने लगा। यह क्या? अभी एक क्षण पहले आपने देखा था कि दूसरी ओर साधारण जल था और वह भी एकदम शान्त था, पर उस नालेको खोलते ही उस तरफ बाढ़ सी आ गयी। जल खौलने लगा और कुण्ड भर गया। मल्लाहने दोनों तरफके जलकी तह मिलायी और लोहेका फाटक खोल दिया, जहाज चला गया। हर घड़ी यही हुआ करता है और इसी तरह एक तरफका जहाज दूसरी तरफ पहुचाया जाता है। आपने इसे एक साधारण बात समझी होगी। पर इसकी तहमें जाइये, आपको विदित होगा कि गुरुत्वाकर्षण अपना काम उसी तरह निरन्तर यहां भी करता जा रहा है।

अब अपने जीवनको लीजिये और उसकी परीक्षा कीजिये। आप क्या देखते हैं। हमलोग अनेक तरहके वन्धनोंमें चारों ओरसे जकड़े हुए हैं। वन्धनोंको हम देखते नहीं, पर इनकी विषम शृंखलाका यातनामय अनुभव सदा करते रहते हैं। वन्धनोंके अनेक रूप हैं, अनेक तरहसे इन्होंने हमें घेर रखा है। यदि हम एकसे छुटकारा पानेका यत्न करते हैं तो दूसरा अपना विकराल मुंह खोल सामने खड़ा हो कर कहता है, "खवरदार! जरा भी इधर उधर किया कि निगल जाऊंगा, फिर कहीं ठिकाना नहीं लगनेका, न दीनके रहोगे, न दुनियाके!" आप चक्करमे होंगे कि ये वन्धन क्या हैं? किसका हमपर इतना अधिक जोर जुलम है? कौन हमें इस प्रकार डांट और फटकार वतलानेवाला है? आपके समाजकी प्रचलित प्रथाएँ रीति और रिवाज। क्या आप क्षण भरके लिये भी इनके विपरीत चलनेका साहस कर सकते हैं? क्या आप एक काम भी अपने हृदयकी स्वतन्त्र प्रेरणाके अनुसार कर सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। उसी घड़ी याद आवेगा कि जनापवादका घेरा जवर्दस्त है, लोग तुरन्त निन्दा करने लगेंगे, चारों ओरसे वौछार पड़ेगी और घरसे निकलना भी कठिन हो जायगा, सारी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठापर पानी फिर जायगा। वाप दादोंने जो नाम कमाया है वह हमारी वजह-से रसातलको चला जायगा। इसके अलावा वाल वच्चे हैं, भाई-वन्धु हैं। इन लोगोंका भी ख्याल रखना होगा। यदि हम उनके साथ रहते हैं तो समाजमें उन्हें भी नीचा देखना पड़ता है,

चोरोंकी तरह मुंह छिपाकर चलना पड़ता है। पगपगपर विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है। यदि उन्हें छोड़कर हम अलग हो जाते हैं तो हमें भी मानसिक पीड़ा होती है और उन्हें भी। हमें लाचार होकर अपने अभीष्ट मार्गसे हट जाना पड़ता है। पर क्या आप समझते हैं कि इन विघ्न वाधाओंका भय हमारे चित्तकी वृत्तिको रोक सकता है? कदापि नहीं। चित्तमें जिन भावोंका उदय हुआ, उनका अस्त नही हो सकता। यह हो सकता है कि उपयुक्त अवसरमें हम उन्हें व्यक्त न कर सकें,उनपर चल न सके, उनका प्रचार न कर सके। पर वह भाव मर नहीं सकते। जीवित रहेंगे, उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा किया करेंगे। कभी तो वह दिन आवेगा कि समाज उन वातोंको स्वीकार करेगा, हमारा मत स्वीकार करेगा, हमारे विचारोंका पक्षपाती होगा और उनका समर्थन करेगा। उस दिन क्या होगा? जिस तरह वांध टूट जानेसे नदीका जल पूर्ण वेगके साथ वढ़ता है और कोई रुकावट नहीं मानता, उसी तरह चित्तकी प्रवृत्तिकी वाढ़ आ जायगी और सबको अपनी विचार-तरंगोमें लेती हुई आगे वढ़ेगी। ईश्वरके विधानमें विकल्प नहीं होता। वहां दो मार्ग नही कि आज एकसे चलो तो कल दूसरेसे। ईश्वरका विधान एक नियमपर प्रतिष्ठित है,उसीको वह मानता है और उसीके सहारे चलता है। इसमे किसी तरहका धोखा नही, चाल नहीं, ईश्वरका प्रतिवाद करनेवाला कोई नहीं। जैसा करोगे वैसा फल मिलेगा। इस मानव-जगतमें लोग भले हीं मनमानी कर लें,अपने स्वार्थके लिये,

वाहवाहीके लिये अथवा लाभके लिये अन्यथा आचरण कर लें, संसारको धोखा देकर अपना बड़प्पन दिखला लें, पर उस बड़े दरबारमें उनकी चाल नहीं चल सकती, उनकी दाल नहीं गल सकती। उन्हें एक उसी नियमके अनुसार चलना पड़ेगा और उसीके अनुसार उनकी जांच होगी। यदि उसके पालनमें उन्होंने कहींसे कमी की है तो उसका फल वे अवश्य भोगेंगे।

बहुत दिनोंसे एक किंवदन्ती चली आरही हैं। मिश्रदेशमें यह सबसे अधिक प्रचलित है। वहीं की बात है। मिश्र देशमें यह प्रथा थी कि मुर्दोंको मसालेसे तर करके गाड़ देते थे। हजारों वर्ष तक जमीनके अन्दर रहनेपर भी लाशमें किसी तरहका विकार नहीं आता था। कब्रसे निकालनेपर वे सदा ताजे देखनेमें आते थे। एक समयकी बात है कि एक आदमी मसाला लगाकर जिस समय मुर्देको कफनमें लपेट रहा था, दो दाने गेहूंके भी उसमें डाल दिये। मुर्दा गाड़ दिया गया। गेहूंके दाने उसके कफनके भीतर थे। हजारों वर्ष बीत गये। एक दिन कब्र खोदी गयी, मुर्दा निकाला गया। गेहूंके दाने ज्योंके त्यों उसके कफनके भीतर पड़े थे। लोगोंने उन्हें निकाला और फेंक दिया। समय पाकर नमी और धूपके प्रभावसे उनमेंसे अंकुर निकल आये। लोगोंको अतिशय विस्मय हुआ। प्रायः दो हजार वर्षतक ये दाने कफनके नीचे पड़े रहे, फिर भी इनमेंसे अंकुर निकल आये! पर विस्मय करनेकी कोई बात नहीं थी। जीवनकी अवधिका यही रहस्य है। उस समयतक उस गेहूंके दानेमें जान बाकी थी, उसने

अपनी प्रकृति नहीं छोड़ी थी और सुयोग पाते ही उसने जीवित होनेका प्रमाण दिया, अंकुर निकल आये। यह दाने मिश्रमे होने-वाले गेहूंके थे। प्रकृतिका नियम अटल था। जीवन-नौकाकी गति उस समयतक रुकी पड़ी थी, गेहूंके दाने भी कफनमें पड़े काल-की प्रतीक्षा कर रहे थे। उपयुक्त अवसरके आते ही, उनका बन्धन दूर होगया और उन्होंने अपनी करामात दिखलायी। जीवनके रहस्यका विचित्र उद्घाटन हुआ।

इस जीवनमें भी कभी कभी वह अवसर उपस्थित होजाता है, जब मनुष्य अपनी सच्ची अवस्थाका अनुभव करता है,अपनी असलियतको समझता है। वह अवसर विरले ही समय उपस्थित होता है, पर जब आजाता है, उसका आभास सहजमे ही मिल जाता है। यदि तुम मुझे बतला दो कि तुम कहां जाते हो और एक विराने देशमें, जहां न तो तुम्हारा कोई अपना है, न किसी-से जान पहचान है तथा न वहांके देश, काल तथा भाषाका तुम्हें ज्ञान है तो मैं तुम्हें तुरत बतला दूंगा कि तुम किस तरहके जीव हो, तुम्हारा हृदय, तुम्हारा मस्तिष्क किस तरहके तन्तुओंसे बना है। यही क्यों? यदि तुम मुझे यह बतला दो कि जिस समय तुम्हारे हृदयपर किसी तरहका दवाव नहीं रहता, तुम स्वतन्त्र जीवकी भांति बिना किसी चिन्ता या व्यथाके विचार करते रहते हो, उस समय तुम क्या करते हो, तुम्हारी वृत्ति किस ओर जाती है, तुम उसका अनुसरण करते हो या नहीं, तो मैं बतला दूंगा कि तुम किस तरहके जीव हो। रातका समय है, जीवन-यात्राका झंझट इस समय तुम्हारे सिरपर बोझकी तरह नहीं है,

हृदयकी तन्त्रियां मधुर ध्वनिमे स्वतन्त्रताका गुण-गान कर रही हैं, तुम्हारी प्रत्येक इन्द्रियां चेतनावस्थामें हैं, तुम जाग रहे हो, तुम्हारी आंखें खुली हैं, मन स्वतन्त्र विचरण करनेके लिये मुक्त है, ऐसी अवस्थामें तुम्हारे हृदयमें क्या क्या विचार उठते हैं, तुम्हारा मन किस तरहकी कल्पनायें करता है, वह क्या सोचता है, किस आकाश पातालको वह थहा आता है। इसके अनुसार मैं तुम्हें बतला सकता हूं कि तुम किस तरहके जीव हो। इसका एक-मात्र कारण चित्तकी प्रवृत्ति है। इससे प्रगट होता है कि तुम्हारी जीवन-नौका प्रवाहकी कौन दिशा ग्रहण करना चाहती है। कौन मार्ग उसे पसन्द है, किधर उसका झुकाव है।

यही नियम सबसे उत्तम और प्रधान है। संसारके बंधन, समाजकी शृंखलायें यहींतक साथ रह सकती हैं। इसके आगे उनकी गति नही है, उनका मार्ग रुका हुआ है। पर यह नियम अजर है, अमर है, सदाका संगी है। सब अवस्थामे काम देनेवाला है, अमिट है, अभेद्य है। देशकालकी इसे परवा नहीं, सब देशमें, सब कालमें और सब अवस्थामे उसका प्रभाव एकसा रहेगा, वह एक तरहका काम करेगा। यही नियम हमारा नियामक है, इसीकी कसौटीपर हम कसे जायंगे। इसीके अनुसार हमारी जांच होगी और हमारे कर्तव्याकर्तव्यका निर्णय किया जायगा।

अब जरा उस दिनकी कल्पना कीजिये। ईश्वरका दरबार लगा है। हम सब अपराधीकी भांति उसके सुन्दर सुरम्य सिंहासनके सामने खड़े हैं। सब जीवोंका नियन्ता महाप्रभु उसी शुभ्र उच्च सिंहासनपर विराजमान है। वही हमारे कामोंकी,

जांचकर भाग्यका फैसला करेगा। हमलोग उत्सुक होकर उस समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब वह अपना मुंह खोलेगा और हमारा अन्तिम निर्णय सुनावेगा। पर यह क्या! उसने मुँह तो नहीं खोला। केवल हाथका इशारा किया और हमारे बन्धन खुल गये। हमारी आत्मा स्वतन्त्र हो गयी। अन्तरात्माने अपनी गाथा आप आरम्भ कर दी। उसीके अनुसार उसने अपने भाग्य-का निर्णय कर लिया।

यही समय है। एक क्षणके लिये बैठ जाओ और विचारकर देख लो, हिसाब मिला लो और जांच कर लो कि जीवनका प्रवाह किस ओरको है। हम ऊपर चढ़ रहे हैं कि नीचे गिर रहे हैं, हमारा उत्थान हो रहा है कि पतन हो रहा है। यदि आज हम इस बातपर विचार नहीं कर रहे हैं, यदि आज हम इस बातकी जाच नहीं कर लेते कि हमारी जीवन-नौका हमें किस ओर लिये चली जा रही है और आलस्य अथवा लापरवाहीसे दिन योंही काट देते हैं तो हमसा मूर्ख दूसरा कोई नहीं है, शीघ्र ही इसका फल हमे भोगना पडेगा। यदि हमारी जीवन-नौका हमे ऊपरकी ओर लिये जा रही है, यदि हमारा मार्ग सत्य और प्रतिष्ठित तथा पवित्र मार्ग है तो हमसा भाग्यवान इस अवनीतलमे कौन होगा। हमारी बाजी बीस है, हमे किसी बातकी चिन्ता नहीं है। हमारा सब काम बना बनाया कल्याण और आनन्दमय है।

पर मान लीजिये कि हमने खोटा कर्म किया है, हमारी जीवन-नौका बुरे मार्गपर चली जा रही है, हम नीचेकी ओर गिरते जा रहे हैं, हमारा पतन हो रहा है। हमें क्या करना चाहिये। क्या

हताश होकर हमें हाथपर हाथ देकर बैठे रहना चाहिये? क्या हमें यह मानकर सिर नीचा कर लेना चाहिये कि हमारा उबार होगा ही नहीं, हम गिर गये और सदाके लिये गिर गये। नहीं, ऐसा कभी नही होना चाहिये। चेष्टा कीजिये, यत्न कीजिये, गति अवश्य बदल जायगी, प्रवाहका वेग अवश्य पलट जायगा।

कई वर्षकी बात है। मैं शिकागो गया था। शिकागोमें एक नदी बहती है। नदी कहींसे निकलकर एक झीलमें गिरती थी। पानीकी तहपर इतनी अधिक काई जमी थी कि कल्पना नहीं की जासकती। छूनेकी तो बात ही दूर है, पास जाना कठिन था, सड़ी काईकी बदबू चारों तरफ फैल रही थी। शहरकी सारी गन्दगी मानों वहीं फेंकी जाती है और सड़ सड़कर वह पानीके ऊपर चद्दरसी बन गयी है। अभी हालमें मैं उधर फिर गया देखा कि नदीका जल निर्मल और शुद्ध है, काईका कहीं नाम नहीं है, बदबू एक दम गायब है। मुझे आश्चर्य हुआ। पर आश्चर्यका कोई कारण नहीं था। इस परिवर्तनका कारण मुझे तुरत मालूम हो गया। मैंने देखा कि नदी अब झीलमें नहीं गिरती। अब उसका रास्ता इस तरह बना दिया गया है कि वह उस झीलसे निकलती है। अब वह अपने मार्गकी सारी गन्दगी लेकर झीलमें नहीं आती, बल्कि कहीं दूसरी जगह जाती है! यही दशा इस जीवनके प्रवाहकी है। मनुष्य अपनी चेष्टासे इसके प्रवाहको बदल सकता है और बुरे मार्गसे हटाकर इसे सन्मार्गपर ला सकता है।

तीसरा विचार

इन्द्रिय-निग्रह

किसी कुश्तीबाज पहलवानसे जाकर पूछिये—"तुम इतने ब्रह्मचर्यसे क्यों रहते हो" वह यही उत्तर देगा, "हमारी सफलताकी यही कुञ्जी है। ब्रह्मचर्यद्वारा ही हम अपने अंग अंगपर काबू रखते हैं और जबतक हम अपने प्रत्येक अंगको अपने काबूमे नहीं रख सकेंगे हम अपने प्रतिद्वन्दीको पछाड़ नहीं सकेंगे।" वह भली-भांति जानता है कि इन्द्रियोंके सुखसे उसे कहांतक परहेज करना चाहिये और कहांतक वह सुख भोगना चाहिये। वह जानता है कि इन्द्रियोंके सुखमें लिप्त होनेसे हमारी क्या दशा होगी। हमारा शरीर कैसा हो जायगा, हमारी शक्तिका ह्रास हो जायगा और हम गिरे हुए समझे जायँगे। और जब वह अनेक तरहकी बीमारियोंका स्मरण करता है तो उसका कलेजा कांप उठता है।

क्या हममेंसे प्रत्येकको उससे भी भीषण संग्राम नहीं करना है? यह संसार क्या है। अखाड़ा है। हम लड़नेके लिये लंगोट कसकर इस अखाड़ेमें उतर पड़े हैं। काफी पराक्रमके अभावमे हमारी वही दशा होगी जो उस बलहीन पहलवानकी

होती है। हमें उसी तरह इन्द्रिय-निग्रहकी आवश्यकता है, संयमकी आवश्यकता है, ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता है। बिना इसके हममें वीर्य नहीं रह सकता, बल नहीं रह सकता, साहस नहीं रह सकता। साधारण बुद्धिसे विचार करनेपर भी यही भासता है कि सुखी रहनेके लिये हमें आत्मसंयम और सदाचारयुक्त रहना होगा। सदाचार और आत्मसंयमसे रहना किसे पसन्द नहीं होगा, कौन इसमें सुख नही मानता होगा। जिसे इस विषयका थोड़ा भी अनुभव है, जिसने इस संसार-चक्रमे अपना कुछ भी समय बिताया है, वह यही कहेगा कि जहांतक संभव हो इन्द्रियोंका निग्रह करो, इनपर विजय पानेका यत्न करो। देखो! सचेत रहो, कहीं तुम्हारा मन बिगड़ न जाय और तुम फंदेमें फँसकर चौपट न हो जाओ। स्त्रियोंके संसर्गमे मत पड़ो। ये नरकका द्वार हैं, ये तुम्हारा सर्वनाश कर देंगी, इनकी ओर निगाह उठाकर देखो ही नही। यदि तुम्हें अपनी मान मर्यादा, इज्जत और प्रतिष्ठाका जरा भी ख़्याल है तो तुम सदा इनसे दूर रहो। बस, इनके संसर्गमें पड़े कि ये सीधे नरककी ओर ठेल देंगी। इनसे बचो और सदा बचते रहो। संसारका इतिहास उठाकर देखो, तुम्हें मालूम हो जायगा। पृथ्वीमाताके अनेक उज्वल रत्न इसी फेरमें पड़कर नष्ट हो गये। कली खिलने भी न पायी मुरझा गयी। उनके कानोंतक यह आवाज पहुची थी यह रास्ता विनाशकारी है, इसमें एक बार पड़नेसे फिर कोई उबर नहीं सकता पर उन्होंने एक न सुनी। यौवनकी तरंगमें पडकर इन्द्रियोंके

सुखको ही उन्होंने जीवनका परम उद्देश्य माना और उसीमें लिप्त हो गये। परिणाम वही हुआ जो समझा हुआ था।

अगर किसी नवयुवकसे इस तरहकी बातें कही जाती हैं तो वह हँसता है, कहनेवालेको बेवकूफ़ बनाता है, उसकी दिल्लगी उड़ाता है। कई एक तो यहांतक कहते सुने गये हैं कि यदि विषय-सुख निःसार है, इससे परहेज़ रखनेकी आवश्यकता है तो ईश्वरने विशेष इन्द्रियोंकी रचना ही क्यों की। भला इस प्रश्नका क्या उत्तर हो सकता है? पर इसका उत्तर आप ही आप मिल जाता है। जब वे दलदलमें फंस जाते हैं और निकलनेके लिये उन्हें रास्ता नहीं मिलता, तब उन्हें सूझता है कि बात सच थी और मैं भूलमें था। अगर उसी वक्त समझ गया होता और सावधानीसे काम लेता तो यह नौबत क्यों आती। इस हीन और दयनीय दशाको क्यो पहुचना। पर अब क्या होता है। पछताइये और हाथ मल मलकर रोइये। जैसा किया उसका फल भोगिये। प्रकृतिका न्याय अटल है। उसमें विकल्प नहीं होता, यदि तुमने अपराध किया है तो तुम दण्डसे बरी नहीं हो सकते। तुम्हें इसका फल भोगना ही पड़ेगा। प्रकृतिके राज्यमें चालाकी नहीं चलती, चालबाजीका उसपर असर नहीं पड़ता। अगर तुमने मदारके पेड़ लगाये तो आमके फल तोड़नेकी आशा करना व्यर्थ है। यह अदालती कानून नहीं है कि हाईकोर्टके फैसलेकी नज़ीर दिखाकर छुटकारा पा जावोगे,या न्यायाधीशके हृदयमें दया पैदा कराकर मुक्ति-लाभ कर लोगे अथवा पहला

अपराध है, इसलिये क्षमा मांगकर और नेकचलनीकी जमानत और मुचलका देकर पिण्ड छुड़ाओगे। यह तो नैसर्गिक जीवनका अखण्ड नियम है। इसमें 'हां' 'नहीं' नहीं है। इसका एक रूप है, एक प्रकार है, एक भाव है और एक ही प्रयोग है। इसका नियन्ता तथा संचालक महाप्रभु है जो सब चराचर जगतका स्वामी है और किसीके धोखेमे नहीं आ सकता।

यही धर्म्म-ग्रंथोंका सार है। अनादि कालसे हमारे धर्म-ग्रंथ इसी वातकी पुकार मचा रहे हैं। सदाचार, ब्रह्मचर्य वीर्य-रक्षा यही उनकी आवाज है। पर इसपर कितने लोग ध्यान देते हैं। इन्द्रियोंमें उत्तेजना उत्पन्न हुई कि मुंहके वल गिरे और उलटी मुंहकी खायी!

पर हम इस वातको यहीं नही खतम करना चाहते। केवल धर्मकी दुहाई देकर ही हम चुप नहीं रह जाना चाहते और न हमारा काम ही चल सकता है। धर्मकी घोषणा उचित है, दुहाई देना भी ठीक है, पर वह सदा कारगर नही। अन्य वाते भी इससे संवंध रखती हैं और हम वर्त्तमान युगके नवयुवकोंका ध्यान उसी वातकी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं।

एक ओर धर्म्म और दूसरी ओर उचित अनुचितका ज्ञान, इन दोनों वातोंको समझकर नवयुवकोंको आगे हाथ वढ़ाना चाहिये। इसीमें इज्जत है, प्रतिष्ठा है, मान है, मर्य्यादा है। एक वार विचारकर देखो। यदि पापकी छाया सिरपर सवार भी हो चुकी है, हृदयके प्रकाशका द्वार वन्द है और इन्द्रियां

नरककी ओर खींच रही हैं, उस समय भी ठहरो और सोचो। नाडीकी प्रकृष्टता किस बातमें है। नारीको हम सबसे उत्तम किस-लिये मानते हैं। तुम गृहस्थ हो, तुम्हारे बहिनें हैं, बेटियां हैं, माता है, तुम भी किसीकी कोखसे ही पैदा हुए हो। उसका आदर क्यों करते हो, उसकी मर्यादाका इतना गौरव क्यो मानते हो। यदि कोई मनुष्य उनकी ओर आंख उठाकर देखता भी है तो तुम आग बबूला क्यों हो जाते हो, तुम्हारी धमनियोंका रक्त क्यो खौलने लगता है ? तुम उस आदमीसे क्यो कहते हो, रे नरा-धम ! खड़ा रह, इस पापका तुझे अभी मजा चखाता हूं। पराई स्त्रीपर ताकनेका क्या परिणाम होता है, अभी दिखा दूं। क्यों ? इसलिये कि उतनेमें ही रमणी-रत्नकी मर्यादा है, वही उनका सारा गौरव है, उससे शून्य होकर उनका कोई अस्तित्व नही है। जिस रमणीपर तुम पाप-दृष्टि डालते हो, वह भी किसीकी मां है, बहन है, और पत्नी है। यदि उसके सम्बन्धी तुम्हें अवस्थामें देख लेंगे तो क्या तुम्हारी वे वही दुर्गति करनेके लिये उतारू नही हो जायंगे। फिर तुम किसी रमणीका कम आदर क्यो करो। यदि दूसरोंकी बहिन-बेटियोंका आदर करते हो तो दूसरे भी तुम्हारी बहिन-बेटियोका आदर करेगे। किसी बड़े भारी विद्वानका कथन है कि यदि तुम दूसरोसे अपनी इज़्ज़त करवाना चाहते हो तो दूसरोंकी इज्जत करना सीखो।

यह तो इसका एक पहलू हुआ। अब दूसरे पहलूसे इस-पर विचार करो। तुमने किसी रमणीका पाणिग्रहण किया

है। अग्निको साक्षी बनाकर उसे अपने जीवनकी सङ्गिनी बनाया है। उसे तुम अपनी अर्धांगिनी कहते हो।

छल छिद्र और कपटसे दूर रहकर निरन्तर उसीकी उपासनाकी प्रतिज्ञा करते हो। पर आज इन्द्रियोंके दास बनकर तुम उस ईश्वरीय प्रेमपर तिलांजलि देकर न जाने कहां कहां भटकते फिरते हो। क्या इससे भी घोरतम पाप कुछ और हो सकता है? जिस प्रेमके बंधनमें बँधते समय तुमने इतने देवोंकी साक्षी दी थी, धर्म-ग्रंथकी शपथ खायी थी, उसी प्रेमपर अब तुम तुषार-वृष्टि कर रहे हो। क्या यह तुम्हारे मनुष्यत्वके अनुकूल है? क्या यही तुम्हारी मर्यादा उचित बतलाती है? एक तीसरा पहलू और है। जिस मार्गका तुमने अवलम्बन किया है, यदि वह नीच मार्ग है तो तुम्हारे शरीरमें गन्दी हवाने प्रवेश किया है। तुम उसी हवाको अपने शरीरके भीतर भरकर घर लौटते हो। तुम्हारे संसर्गसे घरकी हवा भी गन्दी हो जाती है। कलुषित विचार फैलानेवाले कीटाणु तुम्हारी सांससे निकलकर घरकी पवित्र हवामें मिल जाते हैं और समस्त वायुको खराब कर देते हैं। तुम्हारा बुरा असर दूसरोंपर पड़ जाता है; वे भी तुम्हारी तरह गड्ढेमें जा गिरते हैं। इस तरह एक तुम्हारी भूलके कारण घरभरका नाश हुआ।

यह तो लौकिक बात हुई। मर्यादा भी इसी तरहकी शिक्षा देती है। धर्मकी व्याख्याओंसे यदि इन बातोंको मिलाकर ें तो वहांसे भी यही ध्वनि निकलती है। हम ईश्वरकी

सन्तान हैं। उसीने हमें इस पृथ्वीपर भेजा है। उसीने हमें पैदा किया है कि हमलोग इस पृथ्वीपर अपना बल तथा पौरुष बढ़ाकर अपनी शक्ति मजबूत करें और उसके संदेशको फैलानेकी अधिकाधिक योग्यता प्राप्त करें। इससे हमें सदा यह यत्न करना चाहिये, उस तरहका जीवन-यापन करना चाहिये, जिससे हमारी शारीरिक योग्यता दिनपर दिन बढ़ती जाय, हम बल ग्रहण करते जायँ। यदि यह न करके हमने इसके प्रतिकूल कोई ऐसा काम किया, जिससे इस शरीरका नाश हुआ, यह ह्रासको प्राप्त होने लगा तो हम केवल अपनेको ही धोखा नहीं देते, अपना ही नाश नहीं करते, बल्कि ईश्वरके सामने भी पापके भागी होते हैं, क्योंकि उसकी वस्तुका हम दुरुपयोगकर उसका नाश कर रहे हैं, उसे बेकाम बना रहे हैं। हिन्दू-दर्शनशास्त्रका मत है कि हमारी आत्मा ईश्वरकी आत्मा है। अंशरूपमें वह हम सबमें विद्यमान है, वह घट घटमें व्याप रहा है। इस तरह प्रत्येक मनुष्यका यह शरीर मन्दिर है, जिसमें ईश्वरकी सजीव प्रतिमा बैठी है। अब क्षणभरके लिये विचार कीजिये। आपने अपने पड़ोसमें एक मन्दिर बनवाया। उसमें किसी देव या देवीकी प्रतिमा स्थापित की, प्राण-प्रतिष्ठा की। थोड़े दिनके बाद एक नास्तिक आता है और उस मन्दिरको तोड़नेकी तैयारी करता है। आप पहले तो उसे समझाते हैं आरजू मिन्नत करते हैं, प्रलोभन देते हैं। यदि वह इससे भी नहीं मानता तो आप उससे युद्ध ठान देते हैं और प्राण रहते मन्दिर-

का विध्वंस अपनी आंखों नहीं देखते। यह कपोल कल्पना नही है, हमारे देशके इतिहासके पन्ने इस तरहकी घटनाओंसे रंगे पड़े हैं। पत्थरकी मूर्तिमें प्राण-प्रतिष्ठा की और उसके लिये मन्दिर वनवाया। उस मन्दिरके लिये आपने प्राण दिया। तो क्या इस मन्दिरको अपने हाथों वरवाद करने में आपको उससे भी वढ़कर सन्ताप नहीं होता। इस मन्दिरमें तो ईश्वर सजीव वर्त्तमान है। जव निर्जीवके लिये प्राणतक देते हैं तो सजीवके लिये उससे भी अधिक निछावर करनेकी तत्परता होनी चाहिये। उलटे अपने ही हाथों अपने ही कर्मोंद्वारा उस मन्दिरको ढहानेका यत्न करना कितना भारी पाप है, यह सहज ही अनुमान कर लिया जा सकता है।

एक सदाचारी और एक दुराचारीको सामने वैठा दीजिये और दोनोंकी मुखश्रीको मिलाइये। एकका चेहरा चमकता अंगारे सा दिखायी देगा और दूसरेके चेहरेपर मुर्दनी छायी होगी, मानों हत्या की है, हत्या उसके सिरपर सवार है। क्यों? पाप-कर्म्मोका यही फल है। वह जीवन-ज्योतिको वुझा देता है,उसका प्रकाश लुप्त हो जाता है। फिर शान्ति कहां रह सकती है? सद्-विचारोंका जव अवसान हुआ,तो दीप्ति और प्रकाश कहांसे आवे?

लोग कहते हैं परमपिता वड़ा दयालु है। वह अपनी सन्ततिकी यातना नहीं देख सकता। उन्हें दु.ख भोगते देख उसका हृदय पिघल जाता है और वह उनके सारे अपराध क्षमा देता है। इसमें सार्थकता अवश्य है, पर मनुष्यके कर्मोंके

अनुसार उसकी बाढ़ भी तो अवश्य ही मारी जायगी। अनुमान कीजिये कि आप अपने साथियोंके साथ एक पहाड़पर चढ़ने जा रहे हैं। प्रत्येकने भिन्न २ मार्ग पकड़ा और बाजी लगी कि देखें कौन सबसे आगे जाता है। अंधेरी रात थी, साफ सूझ नहीं पड़ता था। सबोंने सावधानीसे पगडण्डी पकड़ी और ऊपर चढ़ने लगे। तुमने गलत मार्ग पकड़ा और दूसरी ओर चल निकले। प्रकाश पाकर तुम्हें अपनी भूल मालूम हुई। पर अब क्या होता है। तुम पीछे पड़ गये। भूले हुए रास्ते-को तै करना और फिर पहाड़ीपर चढ़ना, उतने ही समयमें नहीं हो सकता। तुम बाजी हार गये।

ठीक यही बात इस जीवन-संग्रामके साथ है। यदि तुमने इस भरोसे गलत मार्ग पकड़ा है कि ईश्वर तुम्हें क्षमा कर देगा तो तुम इस दौड़में पीछे ही पड़े रह जाओगे, औरोंके बराबर नहीं पहुच सकोगे। इसलिये सदा यही ध्यान रखना चाहिये कि एक बड़ी मजिल पार करनी है। यदि सचेत होकर ठीक मार्गपर नहीं चलेंगे तो उद्धार नहीं हो सकता। जिस आदमीने पथभ्रष्ट होनेका स्वप्न नहीं देखा है, उसकी आत्मा सबसे बलिष्ठ होती है। उसका सामना कोई नहीं कर सकता। भगवान भीष्म पितामहका प्रातःस्मरणीय नाम कौन हिन्दू नहीं जानता होगा। ब्रह्मचर्य-बल ही उनका प्रधान बल था। निर्मल चरित्रका फल पग पगपर देखनेको मिलता है। तब हम क्यों गन्दे मार्गकी ओर जायं, जहां हमारा पतन होगा?

चौथा विचार

सदाचारकी सीढ़ी

एक आदमीको मैंने देखा था। जब कभी कोई उसे अच्छी बात बताता तो वह झट यही प्रश्न करता—"यह आप कैसे जानते हैं कि इससे अच्छा ही फल होगा और हम जो बुरा काम करें तो बुरा फल मिलेगा। यह हम किस तरह मान लें। लोगोंने लिखा है, पर लिखनेसे क्या होता है।"

हमें दूसरोंके अनुभवसे ही शिक्षा मिलती है। हमारे पास दूसरा कोई साधन नहीं है। संसारके इतिहास कर्मोंके फलाफलसे भरे हैं। जिन्होंने जैसा किया है उसीके अनुसार भला या बुरा फल उन्हें भोगना पड़ा है। इतिहासके पन्नोंमें बैठे वे अंगुली उठा उठाकर हमें सचेत कर रहे हैं और कह रहे हैं, इधर हमारी ओर देखो। एक दिन हम भी तुम्हारी ही तरह जवान थे। हमारे लिये सभी मार्ग खुले थे। कहींसे कोई बाधा देनेवाला नहीं था। हमने अपना पग आगे बढ़ाया। कर्म किया और फल पाया। किस मार्गसे क्या फल मिलता है, यहां लिखा पड़ा है। इस घने जङ्गलमें घुसनेके पहले एक बार इधर हमारी ओर आओ और हमारे कारनामे पढ़ लो। फिर आगे बढ़ना।

दूसरोंके अनुभवसे हमें लाभ उठाना चाहिये। देखते हैं कि हमारे पड़ोसीको सब सुख है। धनकी कमी नहीं। मर्यादा भी

खूब बढ़ी हुई है, पर उसके हृदयको शान्ति नहीं। उसने घरमें कदम रखा कि कलह आरम्भ हुआ। पुत्र-पौत्रादि कोई सुखी नहीं। नित नये डाक्टर आते हैं और महीनेमें हजारों रुपये केवल दवादारूमें स्वाहा हो जाते हैं। हम यह अवस्था देखते हैं। एक नहीं हजारों घरोंमें नित यही घटना घट रही है। हमें इसपर विचार करना चाहिये कि इसका क्या कारण है। सब कुछ रहकर भी यह सुखी क्यों नहीं है? सब पदार्थोंके रहते भी इसके लड़के इस तरह प्रभाहीन क्यों हैं? किसीके चेहरेपर रोशनी नहीं। मुर्दनी छा रही है। जवान होते ही इसके घर आत्महत्याकी लीला क्यों होने लगती है। इन कारणोंका पता लगाया तो मालूम हुआ कि इसके घरमें दुराचार घुसा हुआ है, पिताका आचरण भ्रष्ट है, लड़के भी कुपथगामी हैं। देखा कि यही कारण है कि इस घरकी यह अवस्था है। स्मरणकर कांप उठा! भगवन्! इस मार्गसे हमारी रक्षा कर! यदि हम इस मार्ग-पर चलते गये तो हमारा सर्वनाश हो जायगा। हमारा कुल-ध्वंस हो जायगा। हम कहींके न रहेंगे।

अकस्मात् एक दिन हमारे यहां एक मिहमान आये। भोज-नोपरान्त उन्होंने हमसे कुमार्गकी चर्चा की। हमारा हृदय विषण्ण हो गया। उस समय वह वंश हमारे पड़ोसमें नहीं था। पन्द्रह वर्षसे हम दूसरे शहरमें रहते थे; पर उस दयनीय चित्र-को हम नहीं भूल सके। हमने उन्हें सारी घटना कह सुनायी और इसके विषम परिणामकी ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया।

यदि हम इस तरह दूसरोंके कारनामोंपर विचार करके चलें तो आज हमारे जीवनकी यह दुर्दशा न हो। हजारों अधखिले फूल योंही नष्ट न हो जायं। बड़े बड़े शहरोंमें जाकर देखिये. हजारों युवक इस तरह कुपथगामी होकर अपने जीवनके लह-लहाते पौधेपर उबलते पानीका छींटा दे रहे हैं और उसे अकाल ही जला रहे हैं। काले सांपको अगरूका सुगन्धियुक्त धुआं समझकर सूंघने जा रहे हैं। तीखी तलवारको कमलनाल समझकर पकड़ रहे हैं।

एक बार हम अपनी मित्रमण्डलीमें बैठे थे। यही प्रसङ्ग चल रहा था। हमलोग सब कोई एक स्वरसे कह रहे थे कि सदाचारके नियमको तोड़नेका फल भोगना पड़ता है। इसके नित नये परिणाम देखनेमें आते हैं, फिर भी हम न जाने क्यों उससे शिक्षा नहीं ग्रहण करते। एक आगन्तुक महाशय भी वहीं बैठे हमलोगोंकी बातें सुन रहे थे, बोल उठे— महाशय, जबतक हम कभी दरियामें नहीं डूबे, तबतक हम दूसरोंको कैसे बतलावेंगे कि डूबनेमें इस तरह कष्ट होता है। मसल भी है:—"जाके पांव न फटी बेवाई, सो क्या जाने पीर पराई।" उनके अनोखे तर्कसे सब दङ्ग हो गये। किसीसे कुछ कहते न बन पड़ा। मित्रमण्डलीको सन्नाटेमें आया देख हमें बड़ी हँसी आयी। हमने कहा—महाशयजी, आप अपना तर्क अपने हीतक रखिये। बात तो स्पष्ट है। सर न्यूटनने गुरुत्वाकर्षणका नियम खोजकर निकाला। धीरे धीरे संसारने

इसे स्वीकार किया। पर आजतक एक भी माईका लाल ऐसा पैदा न हुआ जो ऊंचे पहाड़पर चढ़ जाता और वहांसे कूदकर न्यूटन महाशयके नियमकी सचाईकी परीक्षा करता। ऊपर फेंके हुए ढेलेको नीचे गिरते देखकर ही सब लोगोंने सन्तोष कर लिया और गुरुत्वाकर्षणको मान लिया। सदाचारसे रहनेमें क्या लाभ होता है, दिव्य जीवनके क्या उपयोग हैं, इनका फल इतना प्रत्यक्ष है कि उसकी जांचमें जान देना आवश्यक नहीं है।

हम पहले ही कह आये हैं कि यह संसार कर्मक्षेत्र है। नाविककी भांति आपको इससे पार होना है। कहीं चट्टान, कहीं तूफान, कहीं कुछ, कहीं कुछ आपका रास्ता रोककर खड़े हैं और तैयारी कर रहे हैं कि एक ही धक्केमें आपकी भीषण नौकाको उलट दें। आपको इन विघ्न-बाधाओंसे लड़ना होगा। इनसे संग्रामकर इनपर विजय पाकर ही आप अपने लक्ष्यपर पहुंच सकेंगे। वहीं आपके फलाफलपर विचार होगा। आपको सदा अन्तिम अवस्थाके लिये तैयार रहना होगा। सब कठिनाइयोंको पार कर जानेपर ही आपके परिश्रमका पारितोषिक मिलेगा। अगर रास्तेमें एक जगह भी आप विचलित हुए तो आपका पतन होगा, आप नहीं बच सकेंगे।

मनुष्यजीवन कितना अल्प है। न जाने अन्त समय कब आ जाय। यदि हम बुराइयोंकी परीक्षा करनेमें ही रह जायंगे तो उसके सामने क्या उत्तर देंगे, जिसने हमें यहां भेजा है। और

जिन लोगोंने ऐसी भूल की है, नासमझीसे काम लिया है, यदि संयोगवश वे अधिक कालतक जीवित रहे हैं तो उन्होंने अपने कर्मोंका फल अवश्य भोगा है।

कितने लोग वीमारी और आपदाके भयसे ही कुपथसे वचे रहते हैं। यह ठीक है, परन्तु ज्योंही भय और आपदाके विचार-से जरा फुरसत मिली, मौका मिला, तो वाहरी दवावके अभाव-में मन विचलित हो जाता है। मनुष्यको अपने साथ साथ अपने परिजनोंका भी ख्याल करना चाहिये। हम गृहस्थ हैं, हम वाल-वच्चेवाले आदमी हैं, हमारी माता है, पत्नी है, वन्धु-वान्धव हैं। हमें कुपथपर पैर रखते देख उन्हें कितनी पीड़ा होगी, उन्हें कितना दुःख होगा। यदि हमारा पतन हुआ तो उनकी देखभाल कौन करेगा। ये अवोध वालक किसके सहारे जीयेंगे? इनकी शिक्षा-दीक्षाका भार कौन उठावेगा? हमारी जरासी भूलका कितना विषम परिणाम होगा। वंशका नाश होगा,वड़ोंकी मर्यादा मिट जायगी, मानवसमाजका एक उज्वल रत्न लुप्त हो जायगा।

हम मिथ्या प्रलाप नहीं कर रहे हैं। यदि समाजका सङ्कोच न होता, लोक-लज्जाका ख्याल न होता तो हम हाथ पकड़कर ऐसे लोगोंको आपके सामने लाकर खड़ा कर देते, जिन्हें एक चूकके लिये जीवनभर पछताना पड़ा। एक ही वार इन्द्रियोंके भँवरमें गिरनेका जीवनभर प्रायश्चित्त करना पड़ा। हमे अपने मनको दृढ़ रखना चाहिये। दृढ़तासे ही हम विजय पा सकते

है। जितनी बाधायें पार करोगे, मन उतना ही प्रौढ़ होता जायगा, साहस उतना ही बढ़ता जायगा। कुश्तीबाजोंको देखो। वे किस तरह आगे बढ़ते हैं और नामी पहलवान बन जाते हैं। उतरते उतरते वे सैकड़ों अखाड़ोंमें उतरते हैं, जोड़ मिलाते हैं और भिड़ाते हैं। विपत्तियोंका सामना करना, प्रलोभनों-से रक्षा पाना और इन्द्रियोंका दमन करना कठिन अवश्य है, पर आज इस कठिनाईको अंगीकार करनेसे कलकी जोखिम मिट जाती है, भविष्यकी आपदायें हट जाती हैं। जीवन संग्राममे सभी सफल होना चाहते हैं, इससे बढ़कर हर्ष भी कहीं नही मिलता, परन्तु इन्द्रियोंपर विजय पाकर जो सुख मिलता है, उसका वर्णन लेखनीद्वारा नहीं किया जा सकता।

पांचवां विचार

सुखकी खोज

संवत् १८३२ में अमरीकाके १५ उपनिवेशोंने एकत्र होकर फिलाडेल्फियामें सभा की और अमरीकाकी स्वतन्त्रताकी घोषणा की। उस घोषणाके निम्न लिखित शब्द थेः—

"यहां उपस्थित अमरीकन ब्रिटिश उपनिवेशोंके निवासी अपने हस्ताक्षरसे यह घोषणा-पत्र निकाल्कर सूचित करते हैं कि आजसे हमलोग किसी राजाके अधीन नहीं रहे। प्रतिनिधिशासन ही हमारे राष्ट्रका आधार होगा। हमारे शासनमें प्रत्येक प्रजाको जान और मालकी पूर्ण स्वाधीनता होगी। प्रतिनिधि-शासनके नियमोंको पालते हुए कोई भी व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक आचरण कर सकता है। अर्थात् किसीपर किसी तरहका बन्धन नहीं रहा।"

कैसे सुन्दर शब्द थे! इन्हें पढ़ तथा सुनकर किसकी आशा-लता लहलहा न उठी होगी। इन शब्दोंके मधुर रसने लोगोंके हृदय-को मस्त कर दिया था। इसीके पानसे उन्मत्त अमरीकाकी हीन और अशिक्षित प्रजाने युद्धक्षेत्रमें ब्रिटनके कान काटे, अम-रीकाकी बेड़ी सदाके लिये काटी। पर क्या लोगोंका वह सुख-

स्वप्न सच उतरा ? क्या वास्तवमें अमरीकन संयुक्त राष्ट्रकी प्रजा अपने नैसर्गिक हकोंका स्वच्छन्दतापूर्वक भोग करती है ? क्या प्रत्येक नागरिक मन चाहा काम कर सकता है ? उस देशके निवासियोंसे ही पूछिये। वे ही इस प्रश्नका ठीक ठीक उत्तर दे सकेंगे।

वह देश (अमरीका) स्वाधीन है। पर क्या सबको स्वाधीन वायु सांस लेनेके लिये मिलती है ? नहीं ! कितने ऐसे अभागे पड़े हैं, जिनके भाग्यमें स्वाधीनता बदी नहीं । कितने ऐसे अभागे हैं, जो अपने नैसर्गिक अधिकारसे वञ्चित हैं। शायद सपनेमें उन अधिकारोंका अनुभव भले ही कर लें, पर जागतेमें तो बेचारोंकी कल्पनामें भी नहीं आते !

आखिर इसका कारण क्या है। जिस देशकी उत्पत्ति ही स्वतन्त्रताके आधारपर हुई है, जो प्रजा-प्रतिनिधि-शासनका पिता माना जाता है, जिसने खूनकी नदियां बहाकर स्वाधीनता प्राप्त की है, वहांकी सन्तानें इस प्रकार स्वाधीनताके सुखसे क्यों वञ्चित हैं? इसके उत्तरके लिये कहीं दूर नहीं जाना होगा। साधारण विचार करनेसे ही असली बातका पता चल जाता है। अमरीकाके निवासी सुखकी प्राप्तिके लिये बेचैन हैं। जैसे हो, सुखी होना चाहते हैं, पर परिश्रम नहीं करना चाहते। यह नहीं चाहते कि पहले कष्ट उठाकर साधन तैयार कर लें, तब सुखकी कामना करें और उसको प्राप्त करें। वे लोग खुद कुछ नहीं करना चाहते। दूसरोंके माथे खेलना चाहते हैं। इसीलिये उन्हें अपने

सुखके लिये कुछ लोगोंको अपनी स्वतन्त्रतासे वञ्चित करना पड़ता है। कुछ लोगोंका कहना है कि अमरीकाके लोग रुपयेके बड़े लोभी होते हैं। वे समयको रुपयेसे तौलते हैं। रुपया पैदा करनेके लिये वे इतने व्यस्त रहते हैं कि एक क्षण भी खोना वे पाप समझते हैं। बात करनेमें समय नष्ट करना तो वे सदा फजूल समझते हैं, खाने पीनेमें जितना समय कम लग सके, वे गनीमत समझते हैं। यदि मशीनोंद्वारा अन्न पिसकर मुंहमें डालनेका कोई उपाय होता तो वे बड़े खुश होते। रुपयेकी चिन्ताको टी लोग अमरीकाके सारे अनर्थोंका मूल बतलाते हैं। वे कहते हैं कि सामाजिक विषमता और भेदभाव, ऊंच-नीचका विचार, मालिक और दास आदि भाव तभीसे आये हैं, जबसे इस देशके निवासियोंकी आंखोंमें रुपये लगे। पर यह कारण नहीं है। अमरीकामें वर्तमान असमानता और विषमताका एकमात्र कारण लोगोंकी अनुचित सुखेच्छा है। जहां कहीं मनुष्य बिना परिश्रम किये सुखकी कामना करता है, वहां उसे दूसरेके साथ पाप करनेकी प्रेरणामें प्रवृत्त होना पड़ता है। चोरको ही लीजिये। वह वैभववान होना चाहता है, धनवान होना चाहता है, पर मिहनत नहीं करना चाहता। दूसरोंने जिन उपायोंसे धन कमाया है, उनका अवलम्बनकर वह भी उसी तरह धन पैदा नकर, एक दिन या कुछ घंटेमें ही वह अखिल संपत्तिका मालिक हो जाना चाहता है। वह क्या करता है। दूसरोंको कष्ट देनेका यत्न करता है, सेंध मारता है, चोरी करता है। पर क्या उसकी

अभिलाषा कभी पूरी होती है ? क्या किसीने आजतक चोरको सुखी देखा है ? सारा जीवन चोरी करने और दूसरोंकी आत्माको कष्ट देनेमें ही बीत जाता है, पर जिस सुखकी कामनासे वह प्रेरित हुआ था, वह ज्योंकी त्यों बनी रह जाती है। ठीक यही बात इस सुख-साधनके विषयमें भी चरितार्थ होती है।

घोषणा-पत्रमें लिखा था कि अमरीकाकी प्रत्येक प्रजाका यह नैसर्गिक अधिकार है कि वह सुख-प्राप्तिके साधनोंका संग्रह करे। उस समयसे लोग सदा सुखकी प्राप्तिके लिये यत्न करते आ रहे हैं। लोगोंने अतिशय तत्परता दिखायी है, कठिन यत्न किया है। पर आजतक एक भी माईका लाल ऐसा न पैदा हुआ जो यह कह सकता हो कि मैंने बिना किसी परिश्रमके ही सुखकी प्राप्ति कर ली है। पर यह देखकर भी लोग बाज नहीं आ रहे हैं। फिर भी लोगोंके हृदयमें न जाने कहांका लालच समाया हुआ है कि लोग आशा लगाकर बैठे हैं और समझते हैं कि एक न एक दिन इसकी पूर्ति अवश्य होगी। इसी भ्रमपूर्ण सुखाशामें पड़कर वे अपना सर्वनाश कर रहे हैं।

प्रत्येक विचारवान मनुष्यको इस शैतानी प्रभावसे बचनेका सदा यत्न करते रहना चाहिये। सच्चे सुखसाधनकी प्राप्तिका यत्न करना चाहिये। इस स्थानपर हमें यही विचार करना चाहिये। अनन्त और सच्चे सुखके वे साधन क्या हैं ?

(१) सबसे पहले हमें यह बात जान लेनी चाहिये कि सुख

वाह्य पदार्थ नहीं है। शारीरिक सुख वास्तविक सुख नहीं है। इन्द्रियोंके सुखसे ही वास्तविक आनन्दकी प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रभूत सम्पत्तिके स्वामी वनकर भी लोग सुखी नही हैं, नाना प्रकारकी चिन्तायें, वेदनायें आ आकर उन्हें सताया करती हैं। सुखका वास्तविक कारण अन्तरात्माका सुख है। यदि हमारी अन्तरात्मा शान्त है, वेदनारहित है तो हम अवश्य सुखी हैं, तभी हमें वास्तविक सुख मिल सकता है। यह सुख हमारी सम्पत्ति, धन और विभूतिपर निर्भर नहीं है। तुम करोड़पति हो, चार मिलोंके मालिक हो, दस जहाज चलाते हो, इससे तुम्हारी आत्मा भी सुखी होगी, यह निश्चय नहीं है। तुम्हारी आत्माका सुख, उसकी शान्ति तुम्हारे विचारपर निर्भर है। अगर तुम बड़े लालची हो, दूसरोकी विभूति देखकर तुम्हारे मुंहमें पानी भर आता है और उसे पानेकी इच्छा होती है, अथवा तुम दूसरोंकी विभूति देखकर जलते हो और उनके नाशकी कामना करते हो, अथवा तुम इस तरहके कुत्सित काममें प्रवृत्त हो कि वीमारियोंसे तुम्हारा पिण्ड नही छूटता, या तुम चिड़चिड़े हो, साधारण वातोंसे भी तुम्हारे शरीरका ताप वढ़ जाता है, मिजाजका पारा खौलने लगता है और तुम आपेसे वाहर हो जाते हो तो तुम्हारे सिरपर चिन्ताका भूत सदा सवार रहेगा और तुम्हारी शक्तिको चवाता जायगा। तुम कभी सुखी नहीं हो सकते।

तुम्हारे हृदयके भाव तुम्हारे सच्चे पड़ोसी हैं। वे सदा तुम्हारे

पास बैठे रहते हैं, तुम्हारी गतिविधिकी देखरेख करते हैं। तुम्हारी कोई बात उनसे छिपी नही रह सकती। उनसे तुम परदा नहीं रख सकते। यदि तुम इसके लिये यत्न भी करो तो व्यर्थ है। छायाकी भांति वे सदा तुम्हारे साथ फिरा करते हैं। तुम इनसे पिण्ड नहीं छुड़ा सकते। यदि तुम इनसे भागकर भी अपनी जान बचाना चाहो तो असम्भव है। ये तुम्हारी खुशी या नाराजीकी परवा नहीं करते। तुम खुश रहो या नाराज, उन्हें कोई परवा नहीं। वे तुम्हारे साथ रहेंगे। बस, तुम्हारे हाथमें एक ही शस्त्र है, एक ही उपाय है, वह यह है कि तुम अपने हृदयसे बुरे विचारको दूर करो और उनके स्थानपर अच्छे विचारोंको जमाओ।

इसपर बहुधा लोग पूछ बैठते हैं कि फिर सच्चा सुख क्या है, जिसकी प्राप्तिके लिये यत्न करना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है? उनके लिये यह उत्तर समुचित होगा—"महाशयजी, डाहको छोड दीजिये, लालच मत कीजिये, दूसरोंकी विभूतिसे जलिये मत, बल्कि आप भी दूसरोंके समान धनी बननेका यत्न कीजिये। किसी विद्वानकी मर्यादा देख आप उससे ईर्षा मत कीजिये और निन्दित तथा गर्हणीय उपायों और युक्तियोंद्वारा उसे नीचा दिखानेका यत्न न कीजिये, बल्कि विद्या प्राप्तकर आप भी उसके बराबर या उससे बढ़कर बन जानेका यत्न कीजिये। किसीको अधिकार-पदपर देखकर आप आहें न भरिये, बल्कि स्वयं वह योग्यता प्राप्त करिये, जिससे वह उस पदपर पहुंचा है और इस-

तरह उस पदपर स्वयं पहुंचिये।" सामाजिक प्रभुत्वके संबंधमें भी यही बात चरितार्थ है। यही सच्चे सुखके मार्ग हैं। इसी तरह चलकर आप वास्तविक सुखका अनुभव कर सकते हैं।

इसके उत्तरमें कुछ लोग कहते हैं कि यह संसार है। इसमें विना दाव-पेंचके काम नहीं चल सकता। जिन लोगोंने दावपेंच और छल कपटसे काम लिया है, वे ही सफल हों सके हैं। अन्यथा सिवा मारे मारे फिरनेके और भटकनेके कोई दूसरा लाभ नहीं। संभव है कि संसारमें भटकना पड़े, पर यही संसार हमारा सव कुछ नहीं है। हम इसी संसारके लिये सव कुछ नहीं कर रहे हैं। इसलिये केवल इहलोककी सफलता या पराजयसे ही हम यह माननेके लिये तैयार नहीं हैं कि जो मार्ग हमने ऊपर वतलाया है, वह असीम आनन्द-प्राप्तिका मार्ग नहीं है।

(२) सुख भी किसीके भाग्यमें पुश्तैनी नहीं लिखा हैं। अर्थात् जिस तरह संसारमें हमें अनेक वातें वंश परम्परासे मिलती चली आती हैं उसी तरह सुख हमें नहीं मिल सकता। यदि हमें सुखी होना है तो हमें उसके लिये यत्न करना पड़ेगा। इससे सिद्ध हुआ कि विना परिश्रमके सुख नहीं मिल सकता। जव विना परिश्रमके सुख नहीं मिलता तो उसका मार्ग भी सुगम नहीं होगा। वीचमें कहीं उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। सारा रास्ता तय किये पीछे ही उसके दर्शन हो सकते हैं।

सुखकी अनेक पगडण्डियां हैं। घरसे वाहर निकले नहीं कि अनेक रास्ते दिखायी देते हैं। प्रत्येक रास्तेके सामने एक खम्भा

खड़ा है और उसपर लिखा है,“इस मार्गसे होकर जाइये । सुख-प्राप्तिका यह सबसे सुगम मार्ग है ।” लिखावटकी भाषा, सड़क-की तड़क भड़क और सजावट अवश्य दिलको लुभानेवाली है । पर ये मार्ग गलत हैं । इस तरहके प्रलोभनोंमें वे ही पड़ सकते हैं, जो परिश्रम करके सुखकी प्राप्ति नहीं करना चाहते । पर आपको स्मरण रखना चाहिये कि इस तरहके प्रलोभन दुराशा-मात्र हैं, ये मरीचिका हैं । जितना आगे बढ़ते जाइये वे और भी दूर खींच ले जायंगे और सुखका मार्ग पीछे छूट जायगा ।

एक महात्माने तुमसे आकर कहा, बेटा ! तुम सुखकी कामनामें क्यों इस तरह पसीना बहाते हो । यह तो हमारे बायें हाथका खेल है । आओ, हम अभी तुम्हें अनन्त सुखके आगार-का दर्शन करा देते हैं । आप फूलकर कुप्पा हो गये । लगे मन-मोदक खाने । वाह अब क्या ! यह स्वामीजी तो बड़े भाग्यसे मुझे मिले । मेरा ईश्वर तो अब मेरे पक्षमें मालूम होता है, नहीं तो भला इन महात्माको यहां आनेका क्या काम था । महात्माजीने देखा, फँस गया । लगे दांव-घात साधने । अन्तमें ले देकर चल दिये । चेलेकी नींद खुली तो देखता है कि बाबाजी सब कुछ ले देकर रफू चक्कर हो गये । सारा सुख हवा हो गया, अपनासा मुँह लेकर बैठ गये । जो कुछ पास था, वह भी चला गया । यह बिना परिश्रम सुख प्राप्त करनेकी अभिलाषाका फल है । क्षण भरका सुख जाता रहा, उसके स्थानपर अनन्तकालव्यापी दु ख, शोक, निराशा तथा पश्चात्तापने घर बनाया ।

हमने सुखके जिन मार्गोंका वर्णन किया है, उनके अनेक रूप हैं और उन्हीं भिन्न भिन्न रूपोंमें वे प्रगट होते हैं। उनका एक रूप जुआ है। जुआड़ी विना परिश्रम धनी वनना चाहता है। जुआखानेमें जितने जाते हैं, सब इसी उम्मीद्से कदम रखते हैं कि वस आज हम सव कुछ जीतकर घर लावेंगे। कितनी जबर्दस्त सुखकी कल्पना है। दांवके वाद दांव इसी आशासे लगाये जाते हैं। अन्तिम परिणाम क्या होता है। वह सव कुछ खोकर चला आते हैं। लेनेके देने पड़े। चौबे गये छब्बे वनने, दूबे वनकर आये।

मान लीजिये कि वह हारता नहीं जीतता ही है। पर क्या इससे उसकी आत्माको शान्ति मिलती है। कभी नहीं। सुखके साधन धनकी प्राप्तिकी लालसा उसके मनमें अधिकाधिक जाग उठती है। जिनको हमारी वातोंका विश्वास न हो वे कलकत्तेके फाटकावाजोंका मुलाहिजा कर लें। अक्षरशः हमारी वातें सच निकलेंगी। दिन रात उन्हें शेयर वाजार, हेसियन और जूट वाजारकी गलियोंमें, सड़कोंपर और दरवाजोंके सामने चक्कर काटते पाइयेगा। कोई विलायतके लिये उत्सुक है तो कोई फसलकी रिपोर्टपर आंख गड़ाये है, कोई टेलिफोनकी घंटी दवा रहा है तो कोई आकाशकी ओर ताक रहा है। रातको भी सुखकी नींद नहीं आती। वाजारका रुख सदा सिरपर सवार रहता है। जब देखिये, वाजारके भावकी फिकर। क्या इसीको सच्चा सुख कहते हैं?

इसी तरहका प्रलोभन और सुखाशा प्रेमके नामसे प्रचलित है। आजकल प्रेमका नाम बाजारमें टके सेर बिक रहा है। पर सच्चे प्रेमके सुखकी प्राप्तिकी कौन कामना करता है। प्रेमका मार्ग साधारण नहीं है। प्रेमका मार्ग कितना कंटकाकीर्ण है, इसका वृत्तान्त लैला और मजनू, शीरी और फरहाद ही बतला सकते हैं। विक्रमसे पूछियेकी उर्वशीके प्रेममें मतवाले होकर आप क्या क्या दे सकते थे। प्राण देना, पत्थर हो जानातक लोगोंने स्वीकार किया है। पर आजकल मतवाले लोग केवल कुत्सित मार्गको ही प्रेमका सुख कहकर प्रेमके पवित्र नामको कलंकित करते हैं। प्रेमके वश होकर मनुष्य क्या क्या उपकार नहीं कर सकता, संसारकी क्या क्या भलाई नही करता, उसीमें वह अनन्त सुख मानता है। प्रेमका लहलहाता पौधा शुभ्र कलि-योंसे लदा रहता है, अमृतके फलकी आशा दिलाता है, पर यह पौधा कुत्सित बीजसे नहीं उत्पन्न हो सकता।

प्रेमका माहात्म्य कौन नहीं जानता। इसके प्रभावका भी किसे ज्ञान नही? संसारमें यदि अविनाशी सत्ता है तो प्रेम ही है। प्रेममें जो सुख है, उसकी अन्यत्र कल्पनातक नहीं की जा सकती।

(३) सुखकी खोजमें सुखकी प्राप्ति नहीं; बल्कि सुखके साधनोंमें सुखकी प्राप्ति है। हमारे कहनेका अभिप्राय यह है कि यदि आप अपनी प्रतिष्ठाके लिये, इज्जतके लिये, मर्यादाके लिये, इन्द्रियोंके आनन्दके लिये धनकी प्राप्तिकी चेष्टा करते हैं तो

आपको सच्चा सुख कभी भी नहीं मिल सकता। सच्चा सुख आपसे कोसों दूर रहेगा। पर धनकी प्राप्ति इसलिये करो कि तुम दूसरोंका दुःख दूर कर सको, असहायोंकी सेवा कर सको, भूखोंको अन्न दे सको, दीन-दुःखियोंका पालन कर सको, तुम देखोगे कि तुम्हें सच्चा सुख मिलता है। सुखकी तरफ मत जाओ, उन साधनोंको ढूंढ़ो, जहांसे सुखका उद्गम है और सुख तुम्हें मिलेगा। इससे अन्तमें हम इस परिणामपर पहुंचे कि सुखके लिये यत्न करना हमारा उतना नैसर्गिक अधिकार नहीं है, जितना सुख है।

छठा विचार

जीवन-शक्ति

प्रकृति नटी विचित्र लीलाओंकी योजना करती रहती है। उसे इसी बातकी लालसा है कि जो एक बार इस अवनीतल-पर आ गया, वह सदा फलता-फूलता रहे। उसका नाश न हो। किसीका अन्त या बीजलोप वह नहीं देखना चाहती। संसारकी वस्तुओंकी वंश-वृद्धिके लिये जी जानसे चेष्टा करती है। उसका सदा यही यत्न रहता है कि जहां एक है, वहां अनेक हो जायं, जो अकेला है वह जोड़ा हो जाय। अब जरा उसकी रचना-चातुरी देखिये। पेड़के सौरभको वह इतना हलका बना देती है कि वायुका एक साधारण झोंका भी उसे उठाकर ले जाता है और जगह जगह फैला देता है। प्रकृति यह क्यों करती है? इसलिये कि यदि सूक्ष्म बीजोंमें से एक दो भी अच्छे खेतमें पड़ गये तो इनका वंश बढ़ेगा, नाश नहीं होगा। प्रकृति नटीने हजारों कीड़ोंको इसी कामके लिये अपना दूत या चर बना रखा है। सृष्टि-रचनाको बढ़ाते रहना ही उनका काम है। इन कीड़ोंका उद्योग तथा उस उद्योगका फल वनस्पतिवर्गमें ही अधिकतर देखनेमें आता है।

ये कीड़े नर और मादा फूलोंको पहचानते हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल ये अपना काम आरम्भ करते हैं और शामतक चलाते रहते हैं। नर फूलोंके सौरभसे उत्पादक पदार्थको उठाते हैं और मादा फूलोंमें डाल आते हैं। यही वनस्पतियोंका गर्भाधान है, यही इनकी सृष्टि-रचनाका क्रम है। यह तो प्रकृतिकी लीलाका एक दृश्य है। अब दूसरे दृश्यकी झलक देखिये। आप और चकित हो जायंगे। एक पुष्पको ले लीजिये और उसके एक एक दलको नोचकर अलग कीजिये। एक दलको उठाकर नीचेसे ऊपरतक गौरसे देख जाइये। क्या मालूम होता है। भिन्न भिन्न रङ्गोंका एक समावेश। इस तरह कि कहींसे जरा भी खटकता नहीं, नागवार या उखड़ा नहीं मालूम होता। एक ही पुष्पके भिन्न भिन्न दलोंका भिन्न भिन्न रूप और भिन्न भिन्न रङ्ग देखकर क्या हम यह नहीं कह सकते कि प्रकृतिने वनस्पतिवर्गकी जातियोंका एकीकरण निश्चय ही किया है। अर्थात् सबोंका प्रभाव सबोंपर डालना चाहा है।

इसके बाद बीजवाले पौधोंको लीजिये। फूल लगता है, फल होता है। नहीं कहा जा सकता कि फल कहां है, पर है अवश्य। पकते ही वह फलोंके बीजको उड़ाता है और छींट आता है। एक स्थानपर एक ही तरहके अनेक पौधे उगते हैं, पर सब ठहरते नहीं, कुछ मर जाते हैं और कुछ बढ़कर फूलते-फलते हैं। ऐसा क्यों होता है? यदि मारना था तो प्रकृतिने इसका निर्माण क्यों किया? प्रकृति स्वयं उत्तर देती है, जोरावरोंकी

जीत! हमने अपना काम कर दिया। जन्म देना हमारा काम था, उसे हमने सम्पन्न किया। अब जीते रहने और बढ़नेका जिम्मा अपना अपना सम्हालते जावो। यह जीवन सङ्घर्ष है। यहां तुम्हें प्रतिक्षण युद्ध करना है। यदि तुम बलवान हो तो रह सकोगे नहीं तो तुम्हारा अन्त हो जायगा। शायद तुम यह कहो कि इससे सृष्टि रचनाका प्रयोजन नष्ट हो जायगा। पर बात यह नहीं है। सब तो मरेंगे नहीं, कुछ न कुछ तो जीते ही रहेंगे और हमारा यही अभिप्राय है। हम चाहते हैं कि जीवनका अन्त न हो। पर संसारको यह अभीष्ट नहीं है कि केवल जीवनका अन्त न होने पावे। संसार यही चाहता है कि दिन प्रतिदिन सृष्टिकी उत्तमता देखनेमें आवे, रचनाका सौन्दर्य नित नया रूप धारण करता रहे और लावण्यका नया नया परिचय देता रहे। एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीका रूप, रङ्ग, ढङ्ग और आकृति चढ़बढ़ कर हो। पर यह तभी चरितार्थ हो सकता है, जब इस पृथ्वीपर बरबङ्क जैसे कोई महाभाग अवतार लें और इस कामकी देखभालका भार अपने ऊपर उठावें।

पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि प्रकृति वनस्पति-वर्गपर ही इतनी कृपालु है। मनुष्य-जातिपर भी उसने अपनी कृपाओंकी उसी तरह वर्षा की है। मनुष्य-जीवनको लीजिये और उसकी परीक्षा कीजिये। जवानीका उन्माद आता है। हृदय उमङ्गोंसे भरा है, जिनकी गति विधि और अवस्थाको वह स्वयं नहीं पहचानता। मनुष्यके हृदयमें उन्मादकी तरङ्गें

एकके बाद एक उठा करती हैं, पर वह नहीं बतला सकता कि इन तरङ्गोंका क्या अभिप्राय है, यह मनोविकार किस लिये है। जवानीका दौरा चलता है और मनुष्यकी इन्द्रियां विविध सुखाभासकी कल्पनामें निरत हो जाती हैं। जवानीके जोशमें बहता हुआ मनुष्य मनको हरलेनेवाली विविध वस्तुओंको देखता है और उन्हें पानेकी अभिलाषा उसके हृदयमें जाग उठती है। कभी कभी तो वह अभिलाषा इतनी बलवती हो उठती है कि बेचैन हो जानेमें आता है और विकलता इतनी बढ़ जाती है कि उस वस्तुको प्राप्त किये बिना चैन नही पड़ता। प्रकृतिका वहां भी यही एक अभिप्राय रहता है अर्थात् सृष्टि-रचनाके उद्देश्यको सार्थक करना। इसके लिये वह विविध प्रयत्नोंसे अपना काम सफल करनेका प्रयत्न किया करती है। वह अपना माया-जाल इस तरह फैलाती है कि युवक उसके चक्करमें आ जाता है, उसका शिकार बन जाता है और उस-की अभिलाषाओंको चरितार्थ करने लगता है। अपना अर्थ सिद्ध करनेके लिये प्रकृतिने उसमे एक विचित्र आनन्दका समा-वेश कर दिया है, जिससे प्राणी और भी मुग्ध हो जाता है और आनन्दमें मस्त होकर वह और भी रत हो जाता है और प्रकृतिकी सहायता करने लगता है। उस समय तो मनुष्य कुछ ख्याल नहीं करता, पर जब एकके बाद एक करके अगणित सन्तानें उत्पन्न हो जाती हैं, तब उसकी चिन्ता बढ़ने लगती है। पर प्रकृतिकी तो कोई हानि नही कि वह इन बातोंपर ध्यान दे

कि आज मनुष्य जिसे आनन्दका खजाना समझ रहा हैं, उसीके कारण कल उसे घोर विपत्तियोंमें पड़ना पड़ेगा, असीम आपदाओंका सामना करना पड़ेगा। इसलिये उसे उत्साहित करना ठीक नहीं। एक बात और है। उमङ्गकी आग बड़ी बुरी होती है। जबतक यह धधकने नहीं पाती कुशलक्षेम है, पर जहां यह धधकी फिर यह बुझनेकी नहीं और उस समय उसकी ज्वाला इतने प्रचण्ड वेगसे उठती है कि वह मनुष्यके सभी उत्तम गुणोंको अपने विशाल उदरमें लेकर जला डालती है और उसे क्षार कर देती है। उसे तो बस एक कामसे काम और वह यह कि सृष्टिकी रचनाका काम जितना द्रुतगामी हो उत्तम है।

पर मनुष्य केवल उमङ्गों और उद्रेकोंसे परिचालित नहीं है। केवल काम-वासना और तदुजनित आनन्द ही उसके जीवनके सर्वेसर्वा नहीं हैं। उसमें वुद्धि है, विवेक है और दृढ़ता है। प्रत्येक काम करनेके पहले वह एक वार ठहरेगा, विचारेगा, उस कामके शुभाशुभ परिणामको अपनी दूरदर्शिता—वुद्धिके अनुसार थहावेगा और तव कहीं आगे बढ़ेगा। वह अन्धोंकी भांति जहां तहां खन्दक या कुएंमें गिर नहीं जायगा। यदि उसकी वुद्धिमें यह बात समा जायगी कि अमुक काम करनेसे या अमुक मार्गपर चलनेसे हमारा पतन होगा तो वह अपने मनको दृढ़ करेगा और उस मार्गकी ओर जानेसे रोकेगा। यदि ऐसा नहीं करता, सोलहों आना प्रकृतिकी प्रेरणाओंके ही

अनुसार चलता है, तो परिणाम यही होगा कि वह हृदयमें उठी प्रत्येक भावनाओंका शिकार होगा और इन्द्रियोंकी तृप्तिकी ओर ही अधिक झुकेगा। इस झुकावका क्या परिणाम होगा, सहज हीमें अनुमान कर लिया जा सकता है, लिखनेकी आवश्यकता नहीं। हमारा लिखनेका यह अभिप्राय नहीं है कि आप इन्द्रियोंके सुखकी कामना ही न कीजिये, उनका सदा निग्रह करते रहिये। हमारा केवल यह कहना है कि विपरीत मात्रामें कोई काम न कीजिये, नहीं तो इसका फल शोचनीय और अशुभ होगा। उदाहरणके लिये भोजनको ही ले लीजिये। हम भोजन क्यों करते हैं। भोजन करनेका हमारा एकमात्र अभिप्राय यही है कि हम जीवन-रक्षा करें, हमारी शक्तिका ह्रास न हो और हम संसार-यात्रामें सफलतापूर्वक आगे बढ़ सकें। पर हम यदि इस बातको भूल जायं और भोजन ही इस जीवनका उद्देश्य समझ लें तो क्या परिणाम होगा ? बस, खाना, पीना इसीकी रट हम लगावेंगे और यही हमारे जीवनका उद्देश्य होगा। हमारी सारी उम्र भोजन हीमें बीत जायगी। इस तरह हम देखते हैं कि अपने सुख और दुःखके हमी विधायक हैं। ईश्वरने हमें सद्बुद्धि दी है, विचार-शक्ति दी है, विवेक दिया है। हम उसका जैसा प्रयोग करेंगे, उसीके अनुसार हमें सुख और दुख मिलेगा। यदि हमने उनका सदुपयोग किया और उनके निर्णयोंके अनुसार चलना अङ्गीकार किया तो हम सुखी रहेंगे, अन्यथा हमारा सर्वनाश

अवश्यम्भावी है। इस प्रकार अपनी योग्यताओंका सदुपयोग-कर हम बहुत ऊपर उठ सकते हैं। इसके लिये हमारे मार्गमें कोई बाधा नहीं है, केवल विवेकसे काम लेना है, अर्थात् यह हमारे हाथकी बात है, चाहे हम अपना सर्वनाश करें, चाहे उन्नतिके शिखरपर पहुंच जायँ।

इसी स्थलपर एक विचित्र प्रश्न उठता है। हम प्रकृतिके धर्मकी निन्दा क्यों करते हैं। क्या प्रकृतिका कार्य हमारी प्रेरणाके अनुकूल नहीं हो रहा है, हममेंसे जो लोग इन्द्रियोंके शिकार हो रहे हैं और अपना नाश कर डाला है, क्या वे जीवन-संग्रामकी इस दौड़में साथ दे सकते हैं? नहीं, वे पीछे रह जायँगे। तो फिर उनके जीनेकी क्या आवश्यकता? उनका तो अन्त हो जाना ही अच्छा है। इसलिये यदि प्रकृति अपनी योजनासे इनका अन्त कर रही है तो इसके लिये हमें प्रकृतिकी शिकायत नहीं करनी चाहिये। उलटे हमें प्रकृतिका कृतज्ञ होना चाहिये।

पर हम उस अवस्थातक पहुचें ही क्यों? इन्द्रियोंके सुख-के हम इस तरह शिकार क्यों बन जायं और अपनी शक्तिका ह्रास क्यों करें। प्रकृतिके हम कृतज्ञ हैं कि वह हमारे साथ साथ काम करती है, पर हमें अपने विवेकसे प्रकृतिके कामोंकी परीक्षा-कर दृढ़ होकर प्रकृतिकी शक्तियोंको अपने अधीन बना लेना चाहिये, न कि हमें स्वयं उनकी अधीनता स्वीकार करनी चाहिये। यही दुर्बलता हमारे नाशका कारण होगी। इसीपर हमें

विजय पाना है। मनुष्यमें उत्पादनकी योग्यता इन्द्रियोंके सुखके लिये नहीं उत्पन्न की गयी है। सृष्टिका निर्माण ही उसका प्रधान लक्ष्य नहीं है। वह तो गौण है। इसका अभिप्राय तो यह है कि इस शक्तिके प्रयोगसे हम एक ऐसी संगिनीको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, जो इस जीवन-संग्राममें हमारा सदा सहायक होती है, हमारे सुखों और दुखोंको साथ झेलती हैं, हमें उत्साहित करती है और हमारी सफलता तथा विजयपर आनन्द मनाती है। साथ ही हम अपनी सञ्जीवनी शक्तिकी स्थापना उसमें करके अपना एक प्रतिरूप उसके द्वारा इस संसारमें छोड़ जाते हैं, जो हमारे गुणोंसे युक्त होकर हमारे अधूरे कामको उठाती है और उसको पूरा करती है। इसके अतिरिक्त यदि हम इन्द्रियोंका पूर्ण निग्रह करते हैं, सदा ब्रह्मचर्यसे दिन बिताते हैं तो उससे हम अलग लाभ उठाते हैं। हमारी मानसिक शक्तिका बल अतिशय बढ़ता है और हमारा आध्यात्मिक जीवन सुधरता है।

हमलोग स्त्रीपुरुषके भेदको बुरा समझते हैं, उसके नामपर रोते हैं और गालियां देते हैं। हम यह समझते हैं कि इस भेदसे हमारे जीवनमें अनेक तरहके प्रलोभनोंने स्थान जमा लिया है, हम उसके शिकार बन गये हैं, पर इससे आत्मनिग्रहको जितना प्रोत्साहन मिलता है, उसकी प्रतिध्वनि हमारे हृदयमें उठती है और सदा हमें बलवान तथा दृढ़ बनाती रहती है। क्या यह साधारण बात है? क्या इसके लिये हमें इस भेदका सदा स्वागत नहीं करना

चाहिये ? क्या आपमें विवेक है ? क्या आपकी धारणा-शक्ति उसी वेगसे काम कर रही है ? यदि आपमें साहस है, दृढ़ता है तो इस जीवन-संग्राममें आप उसकी परीक्षा दीजिये, साबित कीजिये कि आप इसके योग्य हैं। निश्चय जानिये, जिसने विवेक-बुद्धिसे काम लिया, विचारकर कदम आगे बढ़ाया, गढ़ा दिखायी देते ही पीछे हट गया, उसे इस जीवनमे अनन्त सुख मिलता है, जिसका कहीं अन्त नहीं है। इस असीम सुखका आनन्द केवल जवानीमें ही नहीं मिलता, पर जीवनकी प्रत्येक अवस्थामें यह साथ रहता है और हृदयको आह्लादित करता रहता है।

सातवां विचार

दिव्य जीवन

तुम अपनेको धोखा नहीं दे सकते। तुम्हारे हृदयके भीतर ईश्वरके प्रतिनिधिस्वरूप जो आत्मा बैठी है, उसे तुम धोखा नहीं दे सकते। तुम्हारा कोई भी काम उससे छिपाकर नहीं हो सकता। तुम्हारे प्रत्येक कामकी निगरानी वह रखती है। जिस तरह तुम्हारी छाया तुमसे अलग नहीं हो सकती, उसी तरह तुम भी उससे अलग नहीं हो सकते और न उससे अपना पिण्ड ही छुड़ा सकते हो। तुम अमर होकर रहना चाहते हो। जीनेकी तृष्णा कभी नहीं मिटती। तुम्हारे दिलमें सदा यही लालसा बनी रहती है कि कुछ दिनतक और जीते; बल्कि अगर तुम किसी प्रकार अमर हो जाते तो तुम्हें पूरा सन्तोष होता। तुम्हारे अमरत्वके माने हैं तुम्हारी आत्माका अमरत्व अर्थात् इस नाशवान शरीरको कायम रखनेवाला जो जीव है वह तुम्हारे शरीरको छोड़कर कहीं चला न जाय, तुममें वह सदा वर्त्तमान रहे, पर क्या तुम निन्दित जीवन बितानेके लिये ही इस तरहकी अभिलाषा रखते हो? क्या पापमय जीवन-यापन करनेके लिये ही तुम अमरत्वकी कामना करते हो! क्या कुकर्मोंमें लिप्त रहनेके निमित्त तुम इतनी बड़ी बात

चाहते हो? पर स्मरण रखो, जो मनुष्य अपने हाथों अपने जीवनको गन्दा बना डालता है, मिट्टीमें मिला डालता है, वह सबसे बड़ा मूर्ख है। अपनी बरबादी वह अपने हाथ खरीदता है। जो लांछनका टीका वह अपने माथेपर लगाता है, वह अमिट है। संसारमें फिर कोई ऐसा पदार्थ नहीं, जो उसके उस कलंकके टीकेको धो सके अथवा उसका लांछन मिटा सके। इतना ही नहीं, उसके इस पथभ्रष्ट होनेसे उसका और भी अपकार होगा। अपने उत्तम उत्तम समयपर काम आनेवाले सहायक मित्रोंकी कृपासे वह अपनेको वञ्चित करेगा और निराश्रय हो जायगा और उसकी पवित्र आत्मा सदा कैदीकी भांति बन्दी होकर घोर अन्धकारमय कारागारका शिकार बनेगी।

प्रकृतिको धोखा नहीं दिया जा सकता। अभीतक संसारके बुद्धि-विद्यायुक्त आविष्कारकोंने ऐसा कोई मार्ग नहीं ढूंढ़ निकाला है, जिसका अवलम्बनकर मनुष्य प्रकृतिकी आंखोंमें धूल झोंक सके। प्रकृतिके साथ जैसा तुम व्यवहार करोगे, उसके अनुरूप तुम्हें फल चखना पड़ेगा। यदि तुम उसके नियमोंकी अवहेलना करके किसी स्वतन्त्र मार्गके पथिक बनकर चलना चाहोगे तो उसके दरबारमें तुम अवश्य दण्डित होगे, बच नहीं सकते, यह निश्चय जानो। इस पृथ्वीपर जो राजा तुम्हारा शासन करता है, उसके कर्मचारियोंके नेत्रोंमें धूल झोंककर या उन्हें पट्टी पढ़ाकर अथवा घूस देकर तुम अपना काम भले ही चला लो, पर प्रकृतिके न्यायालयमें तुम्हारी एक न

चलेगी। उसके अधिकारी बड़े ही प्रबल हैं। उनकी निगाह प्रत्येक मनुष्यके कामके पीछे पीछे दौड़ा-करती है। उनसे अनदेखी कोई बात नहीं।

कहावत प्रसिद्ध है कि, 'सींचे पेड़ मदारको आम कहासे होय।' जैसे कर्म करोगे उसीके अनुसार फल पाओगे। बुराई करके अच्छे नहीं बने रह सकते। डरसे अथवा खुशामद्से लोग तुम्हारे मुंहपर साफ बात भले ही न कहें, पर "गो चुप रहेंगी जबाने खञ्जर तो खूं पुकारेगा आस्तींका," संसारका यही नियम है और यही आजतक होता आया है। इसमें जरा भी फर्क नहीं पड़ा है और न पड़ सकता है। जिसने गेहूं बोया है, उसे चने नहीं काटने पड़े हैं और जिसने मटर बोया है, उसके हाथ गेहूं नहीं आया है। यदि संसारका इतिहास उठा-कर देखा जाय तो एक विचित्र रहस्यका उद्घाटन होता हुआ दिखायी देता है। संसारमें आजतक जितने विलक्षण आदमी हो गये हैं, उन्होंने अपना जीवन अद्भुत और अलौकिक प्रयत्न-में बिताया है। वे सदा कुछ न कुछ नयी बात करनेकी धुनमें लगे रहे। वे सदा यही चेष्टा करते रह गये कि मैं नयी धुनमें लगा हूं। मैं ऐसा अद्भुत काम करनेकी चेष्टा कर रहा हूं, जिसे आजतक इस संसारमें किसीने नहीं किया है। प्रकृतिके विषयोंकी धारा मैं उलटी बहाऊंगा और उसमें परिवर्त्तन लाये बिना नहीं रहने दूंगा। देखो, मैं संसारको तोड़ता हूं और सही सलामत रहता हूं कि नहीं। जो लोग कहते हैं किकि तप्र अपने

सामने किसीकी उद्दण्डता या ज्यादती नही देख सकती, उन्हें मैं अपने आचरणसे दिखा देना चाहता हूं कि - प्रकृतिकी डींग मेरे सामने नहीं चल सकती। मुझसे उसका वश नहीं। पर क्या आजतक भी किसीने प्रकृतिका मुकावला किया है। प्रकृतिका गुप्तचर एक शिलापर बैठकर उस आदमीकी धुन-पर हँसता है और उसकी कार्रवाई देखकर उसपर झपटता है। आज एक क्षण पहले जो जीव इस तरह डींगें मार रहा था, अपनी बहादुरी इस तरह बघार रहा था, मनही मन कल्पनाओंका पहाड़ खड़ा कर रहा था, वही हथकड़ी-बेड़ीसे बंधा सिर नीचे किये प्रकृतिके दरबारमें खड़ा है और उसपर अभियोग चलाया जा रहा है तथा उसका विचार हो रहा है। उसको पता भी नहीं लगा कि उसपर कब आक्रमण हुआ और वह कब गिरफ्तार किया गया, मानो वह मोहनिद्रामें पड़ा था। एकाएक मोहनिद्राके टूटनेपर वह अपनेको हर तरहसे जकड़ा पाता है और प्रकृतिके दूतोंके कब्जेमें है।

जिन लोगोंने प्रकृतिके नियमोंकी अवज्ञा की उनकी बात तो सुन ली। पर उनकी क्या कैफियत है, जिन्होंने प्रकृतिके नियमोंका पूर्णतया परिपालन किया है, जो प्रकृतिके नियमके अनुसार ही चले और सदा उसकी शरणमें रहे। इसके लिये भी हमें इतिहासके ही पन्ने उलटने पड़ेंगे। उन्हींमें जो सार भरा पड़ा है, उन्हींसे देखना होगा कि वास्तविक बात क्या है? जिन लोगोंने प्रकृतिकी आज्ञाको मानकर काम किया है,

उनका जीवन साफ साफ बतलाता है कि यही मार्ग कल्याण-कर है। इसीके अनुसरणसे असीम सुखकी प्राप्ति हो सकती है। सद् मार्गपर चलनेका फल यहीं मिल जाता है। यदि उसके वाद पुनर्जन्म है तो वहां भी उसकी फल-प्राप्ति होती है। दिव्य-जीवनका यही परिणाम है।

अब तुम क्या करना चाहते हो? तुम किस मार्गका अव-लम्बन कर चलना चाहते हो? मानव-समाजने अनन्त कालसे जो अनुभव प्राप्त किया है और जिन अनुभवोंका खजाना तुम्हारे पथप्रदर्शनके लिये छोड़ दिया गया है, तुम उनकी सहायता लेकर, उन्हें सच मानकर चलना चाहते हो अथवा स्वयं अपने हीको अनुभवोंका केन्द्र बनाना चाहते हो? इस परम्परागत भावको मान लेना चाहते हो कि यदि आगसे शरीरका स्पर्श हो जायगा तो वह शरीरको अवश्य जलावेगी अथवा स्वयं आगमें कूदकर परीक्षा कर लेना चाहते हो और तव इस स्थिर सिद्धान्तको स्वीकार करोगे?

हमारी समझमें तो सबसे उत्तम मार्ग यही है कि आजतक संसारके प्राणियोंने जो अनुभव तुम्हारे सामने रख दिया है, उसीका सहारा लेकर संसार-यात्रा करो। इसीमें कल्याण है और असीम लाभ है। एक वार संसारकी ओर आंखें फेरकर देखो। क्या दिखायी देता है? जीव नाना प्रकारकी यातनायें भोग रहे हैं, किसीका हाथ सड़ रहा है तो किसीके पैरमें कीड़े पड़ रहे हैं। यदि कोई कराह रहा है तो कोई आहें

भर रहा है। ऐसी ऐसी बीमारियोंके शिकार बन गये हैं कि देखकर जी दहल जाता है, चित्त व्याकुल हो उठता है। रोते हैं और चिल्लाते हैं। कहते हैं, कोई है, जो इस महान विपत्तिसे मेरी रक्षा करता? हा! मैंने यह क्या किया! ऐसा नीच कर्म मैं भविष्यमें कभी नहीं करूंगा। इससे अब मुझे उबारो। पर अब क्या हो सकता है? प्रकृतिके दरबारमें तो विकल्प है ही नही। जैसा किया उसका फल तो अवश्य भोगना पड़ेगा। त्रुटि नहीं हो सकती। यदि यह विवेक-विचार कुछ दिन पहले ही उत्पन्न हो गया होता तो आज यह नौबत क्यों आती? पर इससे होता क्या है? बुरे कामका नतीजा हमेशा बुरा होता है। पश्चात्ताप और परितापसे हृदय निर्मल हो जाता है, हृदयके विकार दूर हो जाते हैं। भविष्यके पतनसे रक्षा होती है, मनुष्य फिर उसी गड्ढेमें गिरनेसे बचा रहता है, पर इससे उसका पहलेका पाप नहीं धोया जा सकता, पहले जो कुकर्म उसने किया है, उसका फल तो उसे भोगना ही पड़ेगा। जबतक उस फलकी अवधि समाप्त नहीं होती, वह उसी प्रकार यातनामय जीवन बितावेगा। इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। यह अटल है। प्रकृतिके कानून सबपर एकसा काम करते हैं। उनकी चक्की निरन्तर घूमा करती है। जिसने प्रकृतिके नियमोंकी अवहेलना की, वह उसी चक्कीमें डाल दिया गया। फिर रोना-धोना, कसम खाना और तरह तरहकी प्रतिज्ञायें करना व्यर्थ है। चक्की चल पड़ी और पूर्ण निर्दयताके साथ उसने पीसना आरम्भ किया। इसमें प्रकृ-

तिका कोई दोष नहीं। जिसने उसके नियमको तोड़ा और उसका फल पाया। इन्द्रियोंको तुमने अपने वशमें नहीं रखा,कामवासनाने तुम्हारे मनको इस तरह वशीभूत कर लिया है कि तुम संसारमें और कुछ देख ही नहीं रहे हो। अन्धोंकी तरह उसीके दास बनकर तुम उसके दिखाये मार्गपर चले जा रहे हो तो इसका परिणाम क्या होता है। इतिहासके पन्ने उलटकर देखो। तुम्हें अगणित आदमी ऐसे दिखायी देंगे, जिन्होंने अपने जीवनमें एक बार ही भूल की, एक ही बार प्रकृतिके नियमोंकी अवज्ञा की और उस भूलके लिये उन्हें यावज्जीवन पछताना पड़ा। जो कुछ अनर्थ उन्होंने एक बार ही किया, उसका फल उन्हें आजन्म चखना पड़ा। शारीरिक यातनायें उन्हें आमरणान्त भोगनी पड़ीं। मरते दमतक उद्धार नहीं हुआ। उसी तरह काँपते, रोते और चिल्लाते उन्होंने अन्तिम सांस ली और इस लोककी यात्रा समाप्त की।

यदि तुम चाहते हो कि इस लोकमें जबतक रहें तन्दुरुस्त रहें, रूपवान बने रहें, किसी तरहके शारीरिक विकारके शिकार न बनें तो दिव्य जीवन ही अपना लक्ष्य बनाओ, आचरणको ठीक रखो। यदि तुम चाहते हो कि संसार-यात्रामें तुम सदा सफल होते रहो, तुम्हारी सभी मनोकामनायें पूर्ण हों, जिस कामको तुम उठाओ,उसे सदा पूरा करते रहो,कभी तुम्हें हारकर विषण्ण न बनना पड़े, तो दिव्य जीवनका सहारा लो। यदि तुम संसार रमेंहकर सुखी रहना, चाहते हो तो दिव्य जीवनकी कल्पना

करो और उसीका अनुसरण करो। वही ईश्वर-प्रदत्त सच्चा मार्ग है और उसीसे उद्धार है।

हम पहले ही कह आये हैं कि हम ईश्वरकी सन्तान हैं। हमारी रचना उसने व्यर्थ नहीं की है। किसी विशेप उद्देश्यको लेकर, उसने हमारा निर्माण किया है। वह लीलामय है। हमको अपना आधार बनाकर वह विविध लीलायें करता रहता है। हमलोग उसकी लीलाके पात्र हैं, इसलिये वह हमें संवारनेके सिवा विगाड़नेका कभी यत्न नहीं करेगा। उसकी चेष्टा सदा हमारे कल्याणकी ओर होगी। उसके दरबारमें मन चाहा न्याय नहीं होता। सिफारिश और तरफदारीसे उसके यहां काम नहीं लिया जाता। वह परम दयालु परम पिता है। बच्चोंके साथ जिस तरह सच्चा न्याय करना चाहिये, वह संसारके प्राणीके साथ सच्चा न्याय करता है।

तुम ईश्वरकी सन्तान हो, उसकी वस्तु हो, उसने तुम्हें अपने लिये वनाया है। इसलिये तुम्हारा भविष्य उज्वल है, तुम्हारा मार्ग परिष्कृत है। तुम बड़ी बड़ी आशाओंकी कल्पना-कर सकते हो। पर यदि तुमने एक वार भी कुमार्गका अनुसरण किया तो तुम्हारा भविष्य अन्धकारमय है, तुम अपना नाश कर रहे हो, जिस डालपर बैठे हो उसीको काट रहे हो। ऐसी दशामें तुम्हें अपना कर्त्तव्य सोच-विचारकर स्थिर करना चाहिये। तुम्हें किस मार्गपर जाना चाहिये? क्या तुम यही उचित समझते हो कि सारी सुखाशाओंपर लात मारकर तुम इन्द्रियोंके

तृप्त करनेमें लग जाओ और अनन्त दुख-सागरमें डूबते रहो? यह तो निरी मूर्खता होगी।

कोई कोई कहते हैं कि जब हम ईश्वरकी सन्तान हैं तो हमें चिन्ता किस बातकी? हम किसी बातकी क्यों परवा करें? क्या पिता हर तरहसे अपनी सन्तानकी रक्षा नहीं करता? ईश्वर हमें कुमार्गमें जानेसे अवश्य रोकेगा। पर यह बात नहीं है। ईश्वर तो दूरसे केवल तुम्हें देखा करता है, संसारके अनुभवोंको तुम्हारे सामने रख दिया है। तुम जिस मार्गपर चलना चाहो स्वतन्त्र हो। तुम्हारी गति-विधि नहीं रुकी है! तुम जिस मार्गसे चाहो, जाओ। अपनेको बिगाड़ना और बनाना तुम्हारे हाथमें है।

सारी सम्भावनायें तुम्हारे सामने खोलकर रख दी गयीं। तुम जिस मार्गपर जाना चाहो जा सकते हो, चाहे अपना कल्याण करो, चाहे नाश करो। पर तुम क्या चाहते हो? क्या तुम्हें यही अभीष्ट है कि तेज धारदार छुरा लेकर अपना गला रेत डालो और इस तरह अपनी गर्दन हलालकर आप स्वयं मृत्युके शिकार बनो। क्या तुम यही चाहते हो कि अपने हाथों अपने कल्याण और सुख-सामग्रीकी हत्या करो और जन्मभर दुखके उबलते कड़ाहमें पड़कर चिल्लाओ? क्या तुम यही चाहते हो कि तुम अपनी सारी सुखसामग्रीको जलाञ्जलि देकर नरकके कीड़े बनो और जन्मभर वहीं दुर्गन्धयुक्त स्थानका निवास स्वीकार करो? सब तुम्हारे हाथमें हैं, जिस ओर चाहो, जा सकते हो।

यदि तुम पशुकासा आचारण करना चाहते हो तो तुम्हें उसीके समान फल भी मिलेगा। तुम सदा पशु बने रहोगे। पर तुम दूसरे मार्गका भी अवलम्बन कर सकते हो। दिव्य जीवन बिताओ। भाग्यकी चर्चा मत करो। भाग्य कोई वस्तु नहीं है। उसका दुखड़ा रोना कायरोंका काम है। पुरुषार्थ प्रधान है। पुरुषार्थसे तुम भाग्यको पलट सकते हो। पुरुषार्थ भाग्यकी कुञ्जी है। भाग्यके सहारे पड़े रहना बुद्धिमानोंका काम नहीं। यह तो अपरिपक्व बुद्धिकी पहचान है। जी जानसे काममें लग जाओ और कर्त्तव्यकी चक्की चला दो। संसारमें जितने सुख हैं, सब तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, तृषित नेत्रोंसे तुम्हें देख रहे हैं। उनका पता लगाना, उन्हें अपना बनाना तथा उनसे अनुभव प्राप्त करना तुम्हारा काम है।

आठवां विचार

नवयुवकोंका कर्त्तव्य

एक समय वह भी था, जब हमारा राष्ट्रीय जीवन उन्नति-की चरम सीमापर पहुंच गया था। हमारी राष्ट्रीयताका एक अंश भी कहींसे असम्पूर्ण नहीं था। अनेक तरहकी ऊंची भावनायें हमारे समाजमें प्रचलित थीं। हम आध्यात्मिकताकी पराकाष्ठापर पहुंच गये थे। अतिथि-सेवाका अतिशय उत्कृष्ट और ज्वलन्त उदाहरण हमने संसारके सामने रखा था। सादा जीवन, उच्च विचार, यही हमारे देशका आदर्श था। यही पवित्र-भूमि आर्य ऋषियोंकी, महर्षियोंकी, वेद-वेत्ताओंकी और पुराणा-चार्योंकी भूमि कही जाती थी। जङ्गलके कन्द मूल और फल खा-कर जिन्हें वेद कहनेकी शक्ति थी, पुराणोंके निर्माणकी योग्यता थी, पृथ्वीको हिला देनेका सामर्थ्य था, इन्द्रत्वको भी लात मारनेवाला त्याग था। अगर उनके लिये सादा जीवन और उच्च विचार न चरितार्थ हो तो भूमण्डलमें किसको इन शब्दोंका विश्रेय मानें? 'परोपकाराय सतां विभूतयः' अर्थात् सज्जन पुरुषका सर्वस्व—घर-द्वार क्या शरीरतक—दूसरोंके उपकारके लिये बना है। यहां वे लोग—जिन्हे हम अपना पूर्वज कहनेका अभिमान रते हैं—अतिथि-सेवा करके कभी नहीं अघाते थे। सबसे

प्रिय वस्तु अतिथिके सामने उपस्थित करके भी सकुचाते थे कि मुझसे इनकी समुचित सेवा नही बन पड़ी। न्याय-परायणताका तो कहना ही क्या है। राजा अपने अपराधी पिता-पुत्रको भी दण्ड देनेमें सकुचाता नहीं था। बड़ेसे बड़ा और छोटेसे छोटा आदमी राजाके दरबारमें अपनी फरियाद सुना सकता था। यदि प्रजापर आकर कोई सङ्कट आन पड़े तो राजाके चित्तमें उसी क्षण इस बातकी शङ्का उत्पन्न होती थी कि क्या मुझसे कोई अपराध तो नही बन पड़ा, मैंने कोई अन्याय तो नहीं किया, जो आज मेरी प्रजापर यह दैवी कोप उपस्थित हुआ है।

समयके फेरसे आज ये सब भाव हमसे कोसों दूर भाग गये। हममें उन पूर्वजोंका एक भी गुण नहीं रहा, जिसका हमें अभिमान हो, जिसे आदरकी दृष्टिसे देख सकें। यह हमारे पतन-का इतिहास है। पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उन शब्दोंमें कोई सार नहीं है, निरर्थक हैं, निष्प्रयोजन हैं। एक समय वह था जब चारों ओर इन्हींकी तूती बोल रही थी, आज दुर्भाग्यके कारण अथवा हमारी नादानीसे वे बुरी तरह रोके जा रहे हैं, पर उनकी ज्योति, उनका तेज सदा वैसा ही बना रहेगा, जैसा एक समय था। अगर उनके निमित्त कुछ करते नहीं बन पड़ता तो उनका नाम सुनकर तो एक बार हृदयमें अवश्य उच्छ्वास उठने लगता है। उन्हीं भावनाओंका साथी "संरक्षण" की भावना भी थी। इस लेखमें हम उसी "संरक्षण"की भावना-पर जोर देना चाहते हैं। उस समयके बाद भी जो समय आया

उसमें भी "संरक्षण" की भावनापर जोर दिया गया। इधरसे यही पुकार सुननेमें आ रही है कि हम बुरी तरह पछाड़ खाते और गिरते जा रहे हैं। हमारे संरक्षणका कोई उपाय नहीं हो रहा है। आज ऊंचे ऊंचे प्लेटफार्मोंपरसे भी यही आवाज आ रही है। देशभरमें इसीकी लहर उठ रही है। बड़े बड़े पण्डित और विद्वान आज इसी समस्याको लेकर अस्तव्यस्त हो रहे हैं। बड़े बड़े धर्मज्ञ सभी आज इस प्रश्नसे विकल हैं। समाचारपत्रोंके कालमके कालम इसी "संरक्षण" के प्रश्नकी विवेचनासे भरे रहते हैं। पन्नेके पन्ने इसी विषयकी टीका टिप्पणीसे रंगे रहते हैं। यह संरक्षण क्या है, जातिका संरक्षण, देशका संरक्षण, समाजका संरक्षण, जवानीका संरक्षण, चरित्रबल या सदाचारका संरक्षण, स्वास्थ्यका संरक्षण तथा आत्माकी पवित्रताका संरक्षण आदि। इस संरक्षणके लिये आज ही अपील नहीं हो रही है। इसकी आवश्यकताकी ओर आज नये सिरेसे ध्यान आकृष्ट नहीं किया जा रहा है। बात बहुत पुरानी है। आवश्यकता भी उतनी ही पुरानी है। आज हम भी वही पुरानी बात नयी करके रखेंगे।

यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि हमारा पतन चरम सीमातक पहुंच गया है। किसी दिन हम जितने ऊपर उठे थे, आज हम उतने ही नीचे गिर गये हैं। किसी दिन हममें जितने गुण थे, आज उतने ही हममें अवगुण आ गये हैं। हम अपनी महत्ता खो चुके, सत्ता खो चुके, गौरव खो चुके, पद-प्रतिष्ठा सब कुछ खो

उन्होंने क्या किया, इसका उल्लेख भी निष्प्रयोजन है। बस अब तो हमें इन्हीं नवयुवकोंकी ओर देखना है, जो आज भी बचे हैं, कालके कराल गालमें नहीं जा पड़े हैं। आज जो बच्चे हैं, माताओंकी गोदमें सुखसे सो रहे हैं, किसी प्रकारकी चिन्ता उन्हे नहीं व्याप रही है, उन बच्चोंके ऊपर भी इसका उतना ही भार है। आज जो बच्चे हैं, वह कल बड़े होंगे और उतने ही जिम्मेदार समझे जायँगे, जितने आज नवयुवक समझे जा रहे हैं। संग्राम छिड़ गया है, रणदुन्दुभी बज चुकी है। काम जारी हो चुका है। एक दल आगे बढ़ा था। वह समराग्निमें कूद पड़ा और स्वाहा हो गया। उसने अपना जीवन सार्थक किया, पर काम अधूरा रह गया। तुम्हें वहीसे वह काम उठाना है, उसीको लेकर आगे बढ़ना है। वही तुम्हारे कामका सूत है। उसी सूतको पकड़कर तुम्हें आगे बढ़ना होगा। यह पुनीत काम तुम्हारे भरोसे ही छोड़कर उन्होंने हँसते हँसते इस नश्वर शरीरको छोड़ा। उनके चित्तमें शान्ति थी। क्यों? क्योंकि उन्हें तुम्हारा स्मरण था। वे जानते थे कि हमारे बाद इस कामको उठा लेनेवाले तैयार खड़े हैं। इसलिये उन्होंने एक बार भी यह नहीं कहा था—'हा! हम मरे। पर हमारा काम अधूरा ही रह गया। अब वह पूरा न हो सकेगा!' क्योंकि उन्हें पूरा भरोसा था। वे निश्चिन्त थे। जिन लोगोंने आह्वानपर आगे बढ़कर अपने सबसे प्यारे प्राणोंको निछावर कर दिया था, उन्होंने कुछ सोच-समझकर किया था, किसी महदुद्देश्यके लिये किया था। इस

बातको सार्थक करनेका एकमात्र अस्त्र यही है कि हमलोग—जो बचे हैं—उनके कामको बिना सोच-विचारके उठा लें, उसे पूरा कर दें अथवा उसके पूरा करनेमें इस नश्वर शरीरकी आहुति देकर अमरगतिको प्राप्त हों। जिन लोगोंने इस तरहके त्याग किये हैं, उनके कामको पूरा करनेके लिये हमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देनी चाहिये। जरा भी कोर-कसर रखनेकी आवश्यकता नहीं।

यही समय है। यही अवसर है। संसारके कोने कोनेसे आवाज आ रही है 'उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! प्राप्य वरान्निबोधत !!!' हमें इस अवसरपर कभी भी चूकना नहीं चाहिये। इससे लाभ उठाकर हमें अपना जन्म सार्थक करना चाहिये। अगर इस समय हमने कुछ नहीं किया तो हाथ मलते ही रह जायंगे।

इसके लिये हमें क्या करना चाहिये। कौनसे साधन हैं, जिनके संग्रहसे हमारा काम चल सकता है,हम इस महदुद्देश्य-की पूर्ति कर सकते हैं। सबसे पहले हमें शरीर, मस्तिष्क और मनकी उन शक्तियोंका पालन, वर्द्धन और परिपोषण करना चाहिये, जिन्हें हमने ईश्वरकी कृपासे प्राप्त किया है, जिनका हमें अभिमान है। इस काममें एक क्षण भी गफलत मत करो। जरासा चूके कि गये। सारे जीवनमें वह शुभ घड़ी एक ही बार उपस्थित होती है और उसका कोई भी निर्दिष्ट समय नहीं है कि वह कब आवेगी। कहीं ऐसा न हो कि तुम असावधान पड़े रहो और वह आकर तुम्हें गफलतमें पड़ा देखे और तुमसे

रूठकर चली जाय। इसीलिये हमारा कहना है कि यह मत सोचो कि हम जवान हैं। अभी लड़कपन पार करके आये हैं, सारा जीवन काम करनेके लिये पड़ा है, जीवन-संग्राममें प्रवेश करनेपर फिर दम मारनेकी फुरसत नही मिल सकती, इसलिये आओ, इस समय थोड़ा आनन्द कर लें। भूलकर भी यह ध्यानमें मत लाना और न इस तरहकी बातोंके फेरमे पड़ना, नहीं तो अपना सर्वनाश ही समझो। सदा यह बात ध्यानमें रखो कि अगर तुम्हें इस महत् कार्यको अपने सिरपर उठाना है, इसमें सफल होना है तो तुम्हें तीन बातोंपर सदा ध्यान देना होगा। विना इन तीन बातोंके तुम्हारा उद्धार नहीं हो सकता। यही तुम्हारी सफलताकी कुञ्जी है। आत्मगौरव, आत्मप्रकाश और आत्मसंयमके द्वारा ही सब कुछ कर सकते हो। यदि तुम इन तीनोंमें निपुण हो तो संसारमें कोई भी बाधा तुम्हारे मार्गमें नही उपस्थित हो सकती। तुम अनवरत रूपसे अपने मार्गपर चले जा सकते हो और निश्चिन्त होकर अपना काम कर सकते हो।

हमने ऊपर कहा है कि तुम्हारी सफलताके तीन प्रधान साधन हैं। आत्मगौरव या आत्मप्रतिष्ठाको हमने पहला साधन बतलाया है। इससे हमारा अभिप्राय यह है कि हमें अपनी आत्माकी तथा उसके निवासस्थान इस शरीररूपी मन्दिरकी उपासना करनी चाहिये। किसी बड़े भारी महात्माका वचन है कि दूसरोंकी प्रतिष्ठा वही कर सकता है, जो अपनी प्रतिष्ठा

करना जानता है। अगर हम ऊंचे आसनपर बैठते हैं तो आगन्तुकको भी ऊंचा आसन देंगे, पर अगर हम धूलमें लोट रहे हैं तो उसे कहांसे ऊंचा आसन दे सकेंगे? दूसरा स्थान हमने आत्मप्रकाश या आत्मज्ञानको दिया है। जबतक हम अपनी आत्माको पहचान नहीं लेते, हमारा उद्बोधन नहीं हो सकता। बिना उद्बोधनके हमारा विकास नहीं हो सकता। बिना विकासके हम ऊपर नहीं चढ़ सकते। इसलिये अपनी शक्तिकी प्रतिष्ठा तभी सम्भव है, जब हम अपनी आत्माका ज्ञान पूरी तरहसे प्राप्त कर लेते हैं। और तीसरा स्थान हमने आत्मसंयमको दिया है। बिना आत्मसंयमके हम इस संग्राममें एक मिनिट भी नहीं ठहर सकते। अगर हमारा अपनी इन्द्रियोंपर अधिकार नहीं है और वे ठीक मौकेपर हमसे विचलित हो जाती हैं तो हमारा वही अन्त समझिये। अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिये तथा आत्मविजय प्राप्त करनेके लिये हमें आत्मसंयमकी नितान्त आवश्यकता है। यह युग हमारे लिये संकटका युग है, विपत्तियोंका युग है, संग्रामका युग है। इस युगकी सबसे प्रधान आवश्यकता यही है कि आत्मसंयममें हमारा सबसे अधिक विश्वास और भरोसा रहना चाहिये। हमें अपनेको इस तरहका बना लेना चाहिये कि मन हमारा चञ्चल और चलायमान नहीं होता। हमारी इच्छाके विपरीत इधर-उधर भागता नहीं फिरता। आत्मत्याग भी हममें उसी तरहका होना चाहिये। मानसिक, सदाचारिक तथा शारीरिक शक्तिके

प्रत्येक कणको हमें अपने वशमें रखना चाहिये। एक परमाणु भी हमसे इतस्ततः न हो। इस तरह अतिशय संयमद्वारा हमें बलसंचय करना चाहिये और खजानेमें यत्नसे रखना चाहिये तथा आवश्यकता और उपयोगिताके अनुसार उसका प्रयोग करना चाहिये। कर्त्तव्य खड़ा दरवाजा खटखटा रहा है, आवाजें दे रहा है, सबको आगे बढ़नेके लिये पुकार रहा है। उसकी इस पुकारका साहसपूर्वक कौन उत्तर दे सकता है? उसकी आवाजमें आवाज मिलाकर कौन कह सकता है "मैं तैयार हूं, तेरी बाट जोह रहा हूं। तू आ गया। अब मैं भी तेरे साथ चलता हूं?" वे ही नवयुवक, जिन्होंने पूरी तरहसे आत्म-गौरव आत्मज्ञान और आत्मसंयमका पाठ पढ़ा है तथा उसपर आचरण किया है, ऐसा कह सकते हैं।

नवां विचार

चरित्र-बल

नीतिका वचन है कि "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः"। अर्थात् मनुष्य अपनी इच्छानुसार बन्धन और मुक्ति पा सकता है। अर्थात् जैसा वह कर्म करेगा उसीके अनुसार उसका मन ऊंच या नीच बनता जायगा। मनकी ऊंचता और नीचता ही मोक्ष और बन्धन, स्वतन्त्रता और परतन्त्रताका कारण है। यदि हमारे विचार अच्छे हैं, यदि हम सदा अच्छी अच्छी बातोंका मनन और अध्ययन करते हैं तो हमारे विचार उन्नततर रहेंगे, हमारा मन अच्छी बातोंकी ओर दौड़ेगा, बन्धनोंमें अपनेको बांधना नहीं चाहेगा, इन्द्रियोंका दास नहीं बनेगा। इसके प्रतिकूल अगर हम कुत्सित और हेय मार्गका अनुसरण करते हैं, हमारा मन कलुषित हो जाता है। बुरी भावनायें, बुरे विचार, असंगत बातें हमारे मनमें उठती हैं, इन्हींके शिकार हम बने रहते हैं तो हम कोई भी अच्छा काम नहीं कर सकते। इन्द्रियोंके बन्धनमें हम बुरी तरह जकड़ लिये जाते हैं।

इससे हम इस परिणामपर पहुचते हैं कि हमें मनको सदा शुद्ध और पवित्र रखना चाहिये। हमारे शरीरमें कितनी भी शक्ति

क्यों न हो, हम कितनी ही ऊंची महत्वाकांक्षाओंकी कल्पना क्यों न करते हों, पर यदि हमारा मन शुद्ध नहीं है तो इन सभोंका कुछ फल नहीं है, कुछ प्रयोजन नही है। दुर्बल और शक्तिहीन मनके सामने शरीरकी सारी शक्ति व्यर्थ है।

अगर तुम्हारा मन अपवित्र है तो निश्चय जानो, तुम्हारा पतन भी पास ही है, क्योंकि मन ही सबका संचालक है। मन इन्द्रियोंका राजा है। इन्द्रियां वही काम करेंगी, जिसे राजा कहेगा। नीति भी यही है। "रहै जौनसे देशमें तेहके नृपकी नीति, देखि चलौता चालपर यह चतुरनकी रीति।" इतना ही नही। यदि राजा हिरण्यकश्यपुकी तरह दुष्ट हुआ तो वह अपना अनुसरण जबर्दस्ती करवा सकता है। इसके अतिरिक्त एक बड़ा भारी भेद यह है कि भूमिपति राजा केवल अपनी प्रजाके शरीरपर अधिकार रखता है और वह भी तभीतक, जबतक प्रजा राजाके राजमे रहती है। इस तरह प्रजाके हाथमें राजाकी अवज्ञाका पूर्ण अधिकार है। वह शारीरिक यातना भोगकर रक्षा पा सकती है, जैसे वर्तमान समयमें महात्मा गांधी तथा उनके अनेकों अनुयायी करते हैं—अथवा वह राज्य छोड़कर भाग सकती है और अपनी रक्षा इस प्रकार कर सकती है। पर यहां तो मन राजाका शरीरके अंगोंपर इतना प्रबल अधिकार है कि उसकी प्रेरणा बिना कोई हिल-डोल भी नही सकता। मनकी पकड़ अंगोंपर इतनी प्रवल है कि वह जिधर चाहे, ले जा सकता है। कोई चूं नहीं कर सकता। अर्थात शरीरका बल किसी कामका

नहीं। इसलिये सच्चा बल तभी आ सकता है जब मन शुद्ध है, उसमें किसी तरहका विकार नहीं आ गया है, मनके भाव कलुषित नहीं हो गये हैं।

लोग कहते हैं कि इस संसारमें इसलिये जन्म नहीं मिला है कि सारे दिन मुंह बंदकर हाथ-पैर बांधकर पड़े रहें। यदि ऐसा ही था तो इस जीवको इस भूमिपर भेजनेका प्रयोजन ही क्या था? इस तरह मुंह बन्दकर हाथ-पैर बाँधकर तो वह कहीं भी पड़ा रह सकता था। यह पृथ्वी सुखोंका आगार, विलासिताकी खान है, इन्द्रियोंको सुख और आनन्द देनेका मुख्य साधन है। इसमें नाना प्रकारके सुखके साधन पड़े हैं। अगर ईश्वरने इस पृथ्वीपर जन्म दिया है तो उसका अभिप्राय यही है कि हमलोग उन सुखोंका उपभोग करें, इन्द्रियोंको तृप्त करें, और सृष्टिकी रचनाको सार्थक करें। अगर इस तरहकी इच्छा न होती तो परमेश्वर हमें या तो इन साधनोंके बीच न भेजता या इन साधनोंको ही न उत्पन्न करता, दोनों घटनाओंका साथ होना ही प्रमाण है कि हमें सुख-प्राप्तिमें इनसे लाभ उठाना चाहिये।

हमारा भी यही कहना है कि ईश्वरने हमें बालूकी भांति जलने या तपनेके लिये इस पृथ्वीपर नहीं भेजा है। उसकी आन्तरिक इच्छा है कि हम सुख भोगें। सुखके साधनोंको काममें लावें। पर हमें सुखके सच्चे साधनोंको खोजकर उनका प्रयोग करना चाहिये। लोग साधारणतः जिसे सच्चे सुखका साधन बता रहे हैं, वे वास्तवमें सच्चे साधन नहीं हैं। वह माया-

जाल है, मृगतृष्णा है। अगर तुम अकेले फेरमें पड़ गये तो सिवा हानिके लाभ न उठावोगे। केवल मारे मारे फिरोगे, ठगे जावोगे, तुम्हारी दशा ठीक उस मनुष्यकी होगी जो नौसरियोंके फेरमें पड़कर सोनेका मुलम्मा किये हुए पीतलके चमकते कड़ेको सोनेका कड़ा समझकर सस्ते मूल्यमें पाकर खरीद लेता है और मन ही मन प्रसन्न होता है, पर असल भेद खुल जानेपर पछताता है, हाथ मलता है, और अपनी बेवकूफीपर शर्माता है।

अब प्रश्न यह है कि सच्चा सुख है क्या? हम किस तरह पहचान सकते हैं कि अमुक सच्चा सुख है और अमुक नहीं है। इसकी क्या पहचान है? बड़ा ही सहज उपाय है। इसके पहचाननेमें देर नहीं लगती। क्षणभर विचार करनेसे ही सच्चे और झूठेका पता लग जाता है। आप जिस आनन्दका उपभोग कर रहे हैं, जिस सुखके साधनेमें लगे हैं, उसका तात्कालिक फल क्या होता है? एक बार उसका उपभोग आपने किया। अब जरा उसपर विचार कीजिये। उसमें प्रवृत्त होनेके कारण आपको सुख होता है या दुःख। अगर एकान्तमें विचार करनेसे आपको ग्लानि होती है, पश्चात्ताप होता है तो आपको उस सुखसे तुरत मुंह मोड़ लेना चाहिये। एक उदाहरण देकर हम इसे और स्पष्ट कर देना चाहते हैं। आपके पास दो घंटे फालतू समय है। इस समयका प्रयोग आप शरीर या मनको सुख देनेमें करना चाहते हैं। कई उपाय आपके सामने हैं। आपने बारी बारीसे सबको काममें लाना चाहा। पहला दिन आपने मित्रोंके

साथ गपशपमें ही काटा। जब आप रातको लौटकर आये और उसपर विचार करने लगे तो आपको ग्लानि आयी कि एक तो वह समय बिना प्रयोजन बरबाद जाता है और दूसरे व्यर्थकी बकवादसे दिमाग खराब होता है। दूसरे दिन आप अपने महल्लेकी संगतिमे गये। वहांसे लौटकर आये तो आपका चित्त प्रसन्न था, मन सन्तुष्ट था, आत्मा प्रफुल्लित थी जो अच्छी अच्छी सच्चे सुखका मार्ग बतानेवाली बातें आप वहां सुनकर आये थे, उनपर विचार करनेसे आप आनन्दित होने थे। सच्चे सुख और काल्पनिक सुखका अन्तर कितना प्रत्यक्ष है। इसीसे हम कहते हैं कि जरा विचार कीजिये तो आपको काल्पनिक सुख तथा सच्चे सुखका तुरत पता लग जायगा।

इतनेपर अब हमें यह समझनेमें कठिनाई नहीं पड़ सकती कि अवगुण या दुर्गुण किसे कहते हैं। काल्पनिक सुखकी तलाशमें व्यस्त रहना ही अवगुण है। जिस बातसे आत्माकी उन्नति न हो, मनको सन्तोप न हो, चित्तकी प्रसन्नता न हो, उसे ही अवगुण कहते हैं। काल्पनिक सुखमे एक भी बात नही है। इसीलिये काल्पनिक सुखको अवनतिका मूल कहते हैं। काल्पनिक सुखके फेरमें पड़कर मनुष्य सदा नीचेकी ओर जायगा, क्योंकि सुखके लिये प्रयास किये बिना ही वह सुखकी कामना करता है। इसका परिणाम क्या होगा, इसे समझनेमें जरा भी विलम्ब नहीं हो सकता। हम अपने आप अपनी

अक्षमता प्रगट करेंगे और विपत्तियोंको निमन्त्रण देंगे। संसार हमें मुफ्तखोर कहेगा। जिधरसे हम निकलेंगे, लोग हमारी ओर अंगुली उठाकर कहेंगे "यही व्यक्ति है जो काम करनेसे जी चुराता है, परिश्रम करके सच्चे सुखको ढूँढ़ना नहीं चाहता ; बल्कि मुफ्तमें सुख पाना चाहता है। हरामखोरोंकी जो दुर्गति होती है, वही हमारी भी होगी।

इसपर बहुधा लोग कह बैठते हैं कि सुख और दुःख भोगना तो मनुष्यका धर्म है। इस तनको जिसने पाया है, उसे एकान्त सुख या एकान्त दु.ख नहीं मिल सकता। जो आज सुखी है, वही कल दुःखी होगा, जो आज हँस रहा है, वह कल रोवेगा, जो आज राजमहलोंका सुख ले रहा है, वही कल झोपड़ियोंके लिये तरसेगा, जो आज दूसरोंपर अंगुली उठा रहा है, वही कल मुंह छिपाता फिरेगा। यह प्रत्येक व्यक्तिके लिये अनिवार्य है। फिर हम यह चिन्ता क्यों करें कि अगर हम अमुक काम करते हैं तो हमें सुख मिलेगा और अमुक तरहसे चलते हैं तो दुःख मिलेगा? यह शंका प्रायः उठा करती है। इसलिये इसका निवारण कर देना अनुचित नहीं होगा। पहली बात तो यह है कि सुख दुःख सभी कर्मणा हैं अर्थात् एक जन्ममें हम जैसा कर्म करते हैं, दूसरे जन्ममें उसीके अनुसार हमें फल मिलता है। इसलिये अगर इस जन्ममें अशुभ काम कर रहे हैं तो उसका बुरा फल अवश्य भोगना पड़ेगा। यह अनिवार्य है। इसलिये इस जन्ममें हमें शुभाशुभ कर्मका संचालन बहुत सोच समझकर करना चाहिये। दूसरे

यन्त्रणा और शोकमें बड़ा अन्तर है। जीवनकी प्रत्येक अवस्थामें शरीरीको शोकका शिकार बनना पड़ता है। वह सदा आक्रमण करता रहता है। पर उसका अन्तःरूप ठोस नहीं है। उसका प्रभाव चिरस्थायी नहीं होता। वह आता है और चला जाता है, पर अपनी स्थायी छाया नहीं छोड़ जाता। पर यन्त्रणाको हम अपने आप निमन्त्रण देते हैं। हमारे शुभाशुभ कर्मका फल यन्त्रणा है। हम पाप करते हैं तो उसकी स्मृति हमारी आत्मा-पर चोट करती है। उस चोटसे जो यन्त्रणा उठती है, वह हमारे मर्म-स्थानोंको चूसती है। यही दुर्गुणोंका फल है।

अब मस्तिष्ककी रचनाकी कल्पना कीजिये। उस बड़े मिस्त्रीको अपनी चातुरी और कला-कौशल दिखानेका यहीं पूरा अवसर मिला है। मस्तिष्ककी रचनासे उसने दिखला दिया है कि निर्माण कलामें मैं सानी नहीं रखता। मेरा मुकाबिला करनेवाला नहीं है, हजारों और लाखों सूक्ष्म तन्तुकणोंको एकमें बांधकर उसने इस अंगकी रचना की है। उसे उसने शरीरका राज्य सौंप दिया है। उसकी ही प्रेरणासे हम जान सकते हैं, समझ सकते हैं, बोल सकते हैं और चल-फिर सकते हैं। उस मस्तिष्कमे क्या ही अद्भुत शक्ति है! दोनो तरहका ज्ञान हमें एक ही स्थानसे मिलता है। क्या सच है और क्या झूठ है, हमें वही बताता है, क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये हमें वही सिखलाता है। कर्म, कुकर्म और अपकर्मका मार्ग हमें वही बताता है। कुवृत्तियों और सुवृत्तियोंकी ओर हमें वही ले जाता है।

वही हमारा पथप्रदर्शक है। अगर इसे हमने कलुषित नहीं किया, इसकी कलई नहीं बिगाड़ी तो यह हमें पथभ्रष्ट नहीं होने देता। इस संसार-यात्रामे हमारे दो:ही सहायक हैं। एक तो हमारा मस्तिष्क और दूसरे हमारे पूर्वज। जिस मार्गपर आज हम चलना चाहते हैं, उस मार्गको पकड़कर हमारे पहले अनेकों जा चुके हैं। जिन जिन साधनों और उपकरणोंके प्रयोगसे उन्हें जो कुछ फल मिला था, उसे वे अपने पीछे छोड़ गये हैं और आज हम उसी पथके यात्री होकर उससे लाभ उठा सकते हैं।

आजकल विचित्र युग आ गया है। हमारा सब काम घड़ीके सहारे होता है। हम प्रति क्षण और प्रति मिनिटका हिसाब घड़ीकी सुईके अनुसार रखते हैं। ९-४५ पर भोजन करना, ठीक १० बजे दफ्तर चले जाना, ११ बजे दलालीकी धुनमें पार्टी तलाश करते फिरना इत्यादि, यही हमारी दैनिक दिनचर्या है। हमारे समयमें एक मिनिटका भी अगर हेर-फेर हुआ तो हमारा काम विगड़ जाता है। अगर घड़ी मिनिट दो मिनिट भी सुस्त रही तो हमारा काम विगड़ जाता है और समाजमें हमारी हँसी होने लगती है कि हम समयके पावन्द नहीं है। इसलिये हम सदा अच्छीसे अच्छी घड़ी रखनेका यत्न करते हैं। पर यह घड़ी जड़ पदार्थ है। वह हमें केवल समयका ज्ञान देती है और इतनेसे ही कामके लिये हम इस तरह सयत्न और सचेष्ट रहते हैं। जब ऐसी वात है तो हमारा मस्तिष्क, जो ज्ञान, बुद्धि, मन और विवेकका प्रधान स्थान है,

उसकी हमें कितनी परवा करनी चाहिये ? यदि इसमें थोड़ा भी विचार उत्पन्न हो जाय तो हमारी क्या गति होगी ? उस जड़ घड़ीका सुधार लाख प्रकारसे करनेपर भी क्या इस मस्तिष्क-की लेशमात्र खराबीकी पूर्ति हो जायगी। इसलिये हमें उन बाबुओंसे विशेष आग्रहके साथ कहना है कि आप एक नहीं दस घड़ी बांधिये। कलाई छोड़ आप सिरमें या पुतली बनवाकर आंखमें ही घड़ी जड़वा लीजिये, पर अगर आप चाहते हैं कि आप अपना यह जीवन सुख और सफलतासे वितावें तो आप अपनी लाखों अनमोल घड़ियोंसे भी उत्तम और अनमोल घड़ी-की उपेक्षा न कीजिये, जो आपके शरीरमें वर्तमान है, जिसे ईश्वरने विशेषरूपसे संवारा है और आपको सौंपा है। अगर यह घड़ी ठीक तरहसे काम नहीं करती तो आपकी लाखों घड़ियां वेकार हैं। आप•घड़ियोंको लेकर अपना माथा फोड़ते रहिये, आपको सुख तथा शान्ति नहीं मिल सकती। अगर आप वास्तवमें सुख और शान्तिके उपासक हैं तो आप इसकी रक्षा कीजिये, इसे उच्छृंखल न बनाइये और इसे धोखा देकर काल्प-निक सुखकी ओर मत दौड़ाइये। उसे अपनी ही परिधिपर चलने दीजिये। इस दुराशामें मत पड़िये कि सुखका दूसरा भी सरल मार्ग है।

हम पहले ही कह आये हैं कि सुखकी प्राप्तिका एक ही मार्ग है। उसी मार्गपर अनवरत चलते रहनेसे ही अन्तमें सुख मिल सकता है। अगर कोई यह सोचता है कि हम किसी बीचके

ही मार्ग से वहांतक जल्दी पहुंच सकते हैं तो वह भूल करता है। राजमार्गपर चलकर ही हम सुखके दरवारमे पहुंच सकते हैं। पगडण्डियोंका स्वप्न देखना मरीचिका है। अगर पगडण्डियों-की ओर मनकी वृत्ति जाती है तो निश्चय समझ लीजिये कि मनमें विकार उत्पन्न हो गया है,क्योंकि सुखके लिये प्रयत्न अथवा साधन किये बिना ही सुखकी प्राप्तिकी चाहना करना दुर्बुद्धि है; क्योंकि इससे प्रत्यक्ष है कि हम किसी दूसरेको वञ्चित करके ही अपना काम साधा चाहते हैं। अगर इस तरह हमें सुख मिल भी गया तो उससे हमें लाभ कितना होगा? इस तरहसे जो सुख हमें मिलेगा,उसकी उपमा पोस्तेके फूलसे भलीभांति दी जा सकती है। जिस तरह ढोंढ़के पकड़ते ही फूल झड़कर जमीनपर गिर पड़ता है, तोड़नेवालेके हाथ नहीं लगता, उसी तरह इस सुखका परिणाम होता है। यदि हाथ लग भी गया तो भोगनेकी नौबत नहीं आती। सबसे बुरी बात यह है कि इससे जो यन्त्रणा मनमें उत्पन्न होती है, वह अति कोमल स्थानपर चोट करती है। दुर्गुणोंकी प्रकृति है कि वे हमें विना किसी सारके सुखी रखना चाहते हैं। हमें अपने अवगुणको छिपानेके लिये क्या क्या नहीं करना पड़ता। जो बात हममे नहीं है उसके लिये भी हमें प्रयास करना पड़ता है। मानसिक पीड़ासे मरे जा रहे हैं, पर हमें दूसरोंको दिखलानेके लिये ऊपरसे खुश रहना पड़ता है। हमें कुछका कुछ मानना पड़ता है। जो हो रहा है, उसकी ओरसे आंखें बन्द करके हमें झूठी कल्पनाका शिकार बनना पड़ता है।

प्रत्यक्ष घटनाको हम आंखों देख रहे हैं, फिर भी हमें उसे गलत मानकर चलना पड़ता है।

यही कारण है कि जिन वस्तुओंसे मनकी प्रकृति खराव हो सकती है, मनको कुमार्गमें जानेका अवसर मिलता है, उनके पीछे अवगुणोंकी ढेरी लगी है। उनके संसर्ग और सहवाससे मनमें इस तरहका विचार उत्पन्न हो जाता है कि हम बुराईको भलाई समझने लगते हैं। अवगुणको गुण समझकर ग्रहण करते हैं। इस सम्बन्धमें सबसे सरल उदाहरण हम चायका उपस्थित करते हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि चायमें कोई भी ऐसा तत्व नहीं है, जिससे हमारे शरीरको किसी तरहका लाभ पहुच सके, बल्कि उसमें ऐसे तत्व हैं, जिनसे हमें हानि पहुंचती है। इतना जानकर भी हम चाय पीनेमें किसी तरहका सोच-विचार नहीं करते, बल्कि उसे गुणकारी मान बैठे हैं। हम कहते फिरते हैं, कि थकावट दूर होती है, मन ताजा हो जाता है, नयी स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है, कितना भी काम करते जावो, थकावट नहीं मालूम होती। हम एक विद्यार्थीका हाल जानते हैं। परीक्षाके दिनोंमें वह रातभर जागकर कड़ी मिहनत करता था। पूछनेपर मालूम हुआ कि वह रातभरमें दो डिबिया सिगरेट पी डालता है। सिगरेटसे उसे थकावट नहीं मालूम होती। देखिये, काल्पनिक गुणके वशीभूत होकर वह अपने शरीरका नाश कर रहा था। शराबीकी हालत इससे भी खराब है। जबतक शराबका लबालब प्याला

उसके मुँहतक नही पहुंच जाता, उसे सुख नही है, शान्ति नहीं है। उसके लिये संसार शून्य मालूम होता है। यह काल्पनिक सुखका दूसरा उदाहरण है। तम्याकूका नशा भी इसी प्रकारका होता है। किसी किसीकी आदत ऐसी बुरी पड़ जाती है कि अगर वह सोकर उठते ही चिलम न पीये तो पायखाना साफ नहीं होता। उसने मान लिया है, तम्बाकूमें यह गुण है। पर उसने क्षणभर भी इस बातपर विचार नहीं किया कि जो लोग तम्बाकू नहीं पीते, उन्हें खुलासा दस्त होता है कि नहीं। डाक्टरोंसे पूछनेपर मालूम हुआ है कि जो लोग मनको ताजा करनेके लिये तम्बाकू और सिगरेट पीते हैं, उनका मन थोड़ी देरके लिये ताजा हो जाता है और उसमे स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है, पर उतनी ताजगी और और स्फूर्ति न पीनेवालेके मनमें सदा मौजूद रहती है। हानि उठाकर भी कोई विशेष लाभ नहीं मिल सकता।

शराबका असर मनपर सबसे अधिक पड़ता है। वह मनको विक्षिप्त कर देता है, आपेसे बाहर कर देता है। शराब पीनेकी आदत जितनी अधिक पड़ती जायगी, मस्तिष्क भी उतना ही अधिक खराब होता जायगा। यही बात सभी अवगुणोंके साथ है। जिस किसी वस्तुका असर मानसिक शक्तिकी अन्तरङ्ग अवस्थापर पड़ेगा, उसके दिमागमे अवश्य खलल पैदा होगा। जो वस्तु वास्तवमें वर्त्तमान नहीं है, उसके लिये यदि हम यत्न करते हैं तो क्या परिणाम होगा? उसका

नाश। दीयेमें तेल नहीं रह गया है, फिर भी हम उसे जलाना चाहते हैं तो सिवा बत्ती जला देनेके उसका हम और क्या कर सकते हैं? ठीक यही हालत हमारे मस्तिष्क-की है। हम थक गये हैं। काम करनेकी शक्ति नहीं है, फिर भी हम काम करना चाहते हैं, उसके लिये शक्ति पैदा करनेका यत्न करते हैं। हम प्याला दो प्याला शराब पी लेते हैं और हममे स्फूर्ति पैदा हो जाती है। यह स्फूर्ति कहां-से आयी। बाह्य जगतसे मनका सम्बन्ध ज्ञान-तन्तुओंद्वारा है। वे सदा पराधीन हैं। कोई भी नशीली वस्तु उनपर अपना प्रभाव डाल सकती है। नशीली वस्तुएं इन्हीं ज्ञानतन्तुओंको अपना शिकार बनाती हैं। इस तरह हम देखते हैं कि प्रत्येक स्फूर्तिका प्रभाव ज्ञान-तन्तुओंका नाश करता है।

इस तरह हम इन दुर्गुणोंके शिकार जितने कम या अधिक बनेंगे, हमारा मानसिक विकास उतना ही कम या अधिक होगा। अगर हम एक दो प्याला प्रति दिन पीकर सन्तोष कर लेते हैं तो हमारे मनको थोड़ी क्षति पहुंचती है और अगर हम बोतल दो बोतल रोज छानते हैं तो हमारी हालत बहुत ही खराब हो जाती है। अगर कोई यह समझे कि हम तो दवाकी तरह इसका प्रयोग करते हैं, हमें हानि नहीं पहुंचा सकता तो वह भूला है। किसी किसी अवस्थामें यह भी देखनेमें आता है कि इसका तात्कालिक प्रभाव कुछ नहीं पड़ता। पर इससे यह नहीं मान लेना चाहिये कि इसमें अवगुण नहीं है। अवगुण

जहांके तहां विद्यमान हैं। वे अवसर पाकर अपना प्रभाव अवश्य दिखलावेंगे। सम्भव है, उस आदमीकी मानसिक शक्ति इतनी जोरदार है कि इनका तात्कालिक प्रभाव उसपर कुछ नहीं पड़ता।

पर इससे क्या? अगर हम जानते हैं कि अमुक वस्तुसे हानि होती है तो किसी एकको उससे लाभ उठाते देख हम उसके प्रलोभनमें नहीं फँस सकते। हमें तो उसी रास्तेपर चलना है, जिस रास्तेसे होकर हमारे पहलेके लोग सफल होकर गये हैं। हम शिक्षा ग्रहण करनेके लिये सम्भावित बातके फेरमें पड़कर अनुभव नहीं कर सकते। हमें अपना भला-बुरा अच्छी तरह सोच-विचार लेना चाहिये। ईश्वरने हमें स्वतन्त्र बुद्धि दी है, स्वतन्त्र विचार दिया है। तो हम दूसरोंके दास क्यों बनें। दूसरोपर निर्भर क्यों रहें। हमें फलाफलपर पूर्णरूपसे विचार कर लेना चाहिये। इतना सोचने और समझनेके बाद हमें अपना कदम रखना चाहिये और फिर बिना परिताप या पश्चात्तापके दृढ़तासे आगे बढ़ना चाहिये।

एक बात और है। लोग कहते हैं कि सभा-सोसाइटियोंमें जाकर बच रहना कठिन है। बिना उसके अनुरूप चले मजा नहीं आता। सब लोग तो आनन्द उड़ा रहे हैं और यह एक अकेला मनहूससा बैठा है। पर यदि विचारकर देखोगे तो उस सभाका वास्तविक आनन्द वही ले रहा है और तो नशेमें चूर होकर विक्षिप्त हो रहे हैं।

प्रायः देखनेमें आता है कि कितने लोगोंकी प्रवृत्ति बुराई-की ओर नहीं होती, उनके मनकी प्रेरणा कुत्सित मार्गकी ओर नहीं है, पर तो भी उनमें बुराई आ जाती है। इसका एक-मात्र कारण सहवास है। उनका हृदय कमजोर है, स्वभाव सङ्कोची है, मन दुर्वल है। इसलिये सभा सोसाइटीमें वे सदा दबे रहते हैं। लाचार होकर बुरा-भला सब ग्रहण करनेको तैयार रहते हैं। वे डरते रहते हैं कि इस सभाका कोई व्यक्ति हमपर हँसे नही। इसी भयके कारण वे बुरा-इयोंके शिकार बन जाते हैं। कहा भी है:—तुख़्ममें तासीर होती है और सोहबतमें असर।

हमें सदा स्मरण रखना चाहिये कि इस जीवनमें हमें कितने भारी भारी काम करने हैं। ईश्वरने जितने आदेश देकर हमें इस पृथ्वीपर भेजा है, हमें सबको पूरा करना है, इसलिये हमे जरा जरासे आनन्दके प्रलोभनमें पड़कर अपने अमूल्य जीवनका ह्रास नहीं कर देना है। आलसीकी तरह बैठकर उपयुक्त अवसर या समयकी प्रतीक्षा करनेसे भी तुम्हारा काम नहीं चल सकता। तुम्हें काम करनेके लिये तुरत तैयार हो जाना चाहिये और तत्परतासे तथा एकाग्रतासे काम करना चाहिये। स्मरण रखो कि तुम्हारा सच्चा प्रयास और शुद्ध मन ही इसका अमूल्य उपहार है। तुम्हारे दिलमें यह बात कभी भी नहीं समानी चाहिये कि सुस्त बैठे रहना इस शरीर और मनको आराम देता है और यही जीवनका परम सुख है।

तुम अभी नौजवान हो। तुम्हारे शरीरमें शक्ति कूट कूटकर भरी है। तुम्हारा काम है कि तुम समाजका नाश करनेवाली बुराइयोंका दृढ़तासे सामना करो और उन्हें जड़ सहित खोदकर फेंक दो।

हमें सदा दृढ़प्रतिज्ञ रहना चाहिये कि हमारे ऊपर कैसी भी विपत्ति क्यों न आ पड़े, हम सदा दृढ़ रहें, कभी साहस न छोड़े। हम संकोच या दबावमें पड़कर कोई काम नहीं करेंगे। जो हमारी मानसिक प्रेरणाके विपरीत होगा, उसे हम उसी समय बिना किसी सङ्कोचके अस्वीकार कर देंगे। इस संसारमें वही सबसे बड़ा आदमी है, जो किसी भी दशामें अपने मन, आत्मा और शरीरको कलङ्कित नहीं करता, उनके धवलरूपको अबतक सदा निर्मल और स्वच्छ रखता है। उन्हें सदा सूर्य-की भांति चमकने देता है।

दसवां विचार

सदाचारसे सुख

सदाचारसे हमें कभी भी मुँह नहीं मोड़ना चाहिये। जीवन-का हमें इसे प्रथम और अन्तिम लक्ष्य समझना चाहिये। हमें सदा इसे परिछाईंकी तरह साथ साथ रखना चाहिये। जिस तरह परछाईंको हम त्याग नहीं सकते, गुप्त या प्रगट वह सदा हमारे साथ रहती है, उसी तरह हमें सदाचारको भी नहीं छोड़ना चाहिये। गुप्त या प्रगट रूपसे भी हमें सदा अपने साथ रखना चाहिये। जो जीवन सदाचारमय नहीं है, जिस जीवनके सितारकी प्रत्येक तन्त्री सदाचारका राग नहीं अलाप रही है, जिस जीवन-नौकाको खेनेके लिये सदाचाररूपी डांड़ काममें नहीं लाये जा रहे हैं, उस नौका-की क्या गति होगी? क्या वह एक क्षण भी इस कल्लोलमय सागरमें ठहर सकेगी? इस संसार-सागरकी तरंगे मुँह बाए उसकी ओर दौड़ रही हैं और उसे एक न एक दिन अवश्य ही निगल जायंगी।

जो मनुष्य सदाचारी नहीं है, वह सुखी नहीं है। उसके चित्तको शान्ति नहीं, उसकी आत्मा कभी सन्तुष्ट नहीं। एक पापकी तरफ एक बार बढ़िये, फिर कभी भी संन्तोष नहीं

होगा। एकके वाद दूसरा और तीसरा पाप करते जाइये, पर लालसा अधिकाधिक बढ़ती जायगी। इन्द्रियोंको उच्छृंखल बनाना, उन्हे खारी जलसे सींचना है। जिस तरह खारी जलसे प्यास कभी नहीं बुझती.केवल गला तर हो जाता है, उसी तरह इन्द्रियोंको सद्वाचारसे नीचे गिरा देनेका फल होता है। दूसरे उसका हृदय सदा कचोटा करता है। उसकी आत्मा सदा भयभीत रहती है। एक नौकरका उदाहरण लीजिये। हमने उससे कह दिया है कि डेवढ़ी छोड़कर तमाशा देखने मत जाना। उसने हामी तो भर ली,पर सड़कपरसे वाजेकी आवाज-ने उसके कानोंको इस तरह भर दिया कि वह अपनेको नहीं रोक सका। इन्द्रियोंके फेरमें पड़ गया। इधर उधर देखा तो उसे मालूम हुआ कि उसके मार्गमे बाधा देनेवाला कोई नहीं है। वह दरवाजा भेड़कर निकला और तमाशा देखने चला गया। तमाशा देखकर वह लौटा तो उसने देखा मालिक नहीं आये हैं और दरवाजा उसी तरह भेड़ा हुआ पड़ा है। उसे सन्तोष हुआ। वह फिर उसी तरह बैठकर डेवढ़ीकी रक्षा करने लगा। पर उसकी छाती सदा धड़का करती है। उसे इस बातका डर है कि कहीं बाबूको हमारे जानेका हाल मालूम न हो जाय। वह मालिककी प्रत्येक पुकारपर चौंक उठता है कि कदाचित् उन्हें मेरे जानेका हाल मालूम हो गया हो और मुझे डाटनेके लिये बुला रहे हों। ठीक वही हाल उसका है, जिसने सदाचारके पथको छोड़कर कुमार्गकी शरण ली है।

परमपिता परमेश्वर—जो मालिकोंका भी मालिक है—हमें यह आज्ञा देकर भेजता है कि देखो खबरदार! मनसा, वचसा, या कर्मणा सदाचारके पथसे कभी भी न डिगना। उस समय तो हमने हांमें हां मिला दी और उसकी आज्ञा स्वीकार कर ली, पर यहां आकर उसकी वात भूल जाते हैं और आज्ञाभङ्ग करनेके अपराधी वनते हैं।

जिसने सदाचारका त्याग कर दिया है,उसकी आत्मा कलुषित हो जाती है। उसकी प्रवुद्धावस्थाका सर्वथा नाश हो जाता है। दोनों वातें एक साथ नहीं रह सकतीं। सदाचारके ह्रासके साथ ही साथ आत्माकी प्रवुद्धताका भी नाश होने लगता है, पर आत्मा तो वनी रहती है। अपने ह्रासपर उसे पश्चात्ताप होता है और वह उस मनुष्यके अन्तस्तलको सहती है।

दूसरे वह समाजका भी वड़ा भारी अपराध करता है। समाजकी दृष्टिमें भी वह दोषी और दण्डनीय है। अपने पतनके साथ ही हम एक दूसरेके पतनके भी भागी होते हैं। हम "आपु गये अरु घालहिं आनहिं" को चरितार्थ करते हैं। अर्थात् अपने साथ साथ एक निर्दोष व्यक्तिको पापमें लिप्त करते हैं। विना किसीको अपना साथी या सहायक वनाये हम सदाचारके प्रतिकूल कोई काम नहीं कर सकते। इस तरह हम समाजके साथ अन्याय करते हैं। हम विश्वासघातके अपराधी होते हैं, क्योंकि समाजने हमपर विश्वास किया और हमें अपने अन्दर रखा,

पर हम कितने नालायक निकले कि उसीकी रक्षा करनेवाली दीवालको एक तरफसे काट काटकर गिराने लगे। अब हम इस लायक नहीं रहे कि समाज किसी भी तरह हमारा विश्वास करे या हमें अपने साथ रखे। इसलिये सदाचारी समाजका जितना ही प्रिय पात्र है,सदाचार-भ्रष्ट समाजका उतना ही घृणा-का पात्र है। उसकी सब लोग निन्दा करते हैं उसे सब दुत-कारते हैं। अपने पास उसे कोई ,भी बैठाना नहीं चाहता, सब उसकी सूरतसे घबराते हैं।

चौथे, कदाचार शरीरका नाश कर देता है। जो सदाचार-से गिरा उसने इस शरीरको मिट्टीमें मिलाया। इन्द्रियोंके वश-में हो जाना शरीरमें भीषण शत्रु पैदा करना है। यह घुनके समान भीतर ही भीतर शरीरको चालकर जर्जर बना देता है। बाहरसे चिकना-चुपड़ा रखकर, संवारकर आप उसे कितना ही क्यो न जंचाइये, पर उसके भीतर किसी तरहका सार नही रह गया है, जरासा धक्का दीजिये, गिर जायगा। ब्रह्मचर्य ही हमारे जीवनका सार समझा जाता है। प्राचीन कालमें भी हमलोग ब्रह्मचर्यपर ही अपनी सारी योग्यता निर्भर करते थे। हमारे शास्त्रकारोंने पहली आवश्यकता ब्रह्मचर्यकी बतलायी है। २४ वर्षकी आयुतक अखण्ड ब्रह्मचर्य रखकर वीर्यको पुष्ट और परि-पक्क करना इस जीवनकी पहली आवश्यकता थी। पहलवान लोग अभीतक आजन्म ब्रह्मचारी रहते हैं। बिना ब्रह्मचर्यके " बल नहीं रह सकता। एक मेघनादके लिये लक्ष्मणजी

को १२ वर्षतक अखण्ड ब्रह्मचर्यका जीवन व्यतीत करना पड़ा था। ब्रह्मचर्य बलकी खानि है, और विना बलके जीना भी मरेके समान है।

पांचवें, यह सबसे बुरी और भीषण बीमारियोंका घर है। यह शरीर रोगका घर है। नाना प्रकारकी व्याधियां इसमें वास करती हैं और सदा अवसर ढूढ़ा करती हैं कि कब अवसर मिले और कब हम इस व्यक्तिपर आक्रमण करें। वे सदा हमारी असावधानी और कमजोरीकी ताकमें रहती हैं। वीर्य-नाशसे जो दुर्बलता शरीरमें आती है, उसका अनुमान नहीं किया जा सकता। वीर्य खो देनेसे शरीरकी ठीक वही अवस्था हो जाती है जो राजा विना किसी राज्यकी हो सकती है। एक तो निर्वीर्य होकर हम शरीरके भीतर अनेक तरहकी बीमारियोंको निमन्त्रित करते हैं, दूसरे डाक्टरोंका कहना है कि शरीरके बाहर अर्थात् चमड़ेकी अनेक भीषण बीमारियां इससे उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे शरीरकी बड़ी दुर्गति होती है। इसका कुफल यहीं-तक समाप्त नहीं हो जाता। भावी सन्ततिका जीवन भी इससे भ्रष्ट हो जाता है। ये सब छूतकी बीमारियां परम्परागत हैं। अगर पिताको गरमीका रोग हो गया है तो पुत्रकी रक्षा उससे बड़ी कठिनाईसे होगी। इस तरह भावी सन्ततिपर भी कुठारा-घात किया जाता है। उन्हें भी अपने अपराधसे नरकमें ठेल दिया जाता है। इस प्रकार एक दफे जो रक्तमें अपवित्रता घुस गयी, सात पीढ़ीतक दूर नहीं हो सकती। इस तरह एक

पीढ़ीके पापको सात पीढ़ी भोगेंगी और यदि उन सात पीढ़ीमें इस कलुषित वीर्यने बुरा प्रभाव उत्पन्न किया तो सात पीढ़ी और आगे हानि बढ़ गयी। अर्थात् फिर जन्मजन्मान्तर उस वंशका कल्याण नहीं हो सकता है। उसकी औलाद उसके पापके कारण सदा पापके दग्धानलमें जलती रहेगी।

साथ ही वह मनुष्य फिर अवगुणोंकी खानि हो जाता है। धीरे धीरे उसका पतन आरम्भ हो जाता है और अन्तमें वह इस तरह नीचे गिरता है कि उसका उद्धार ही नहीं हो सकता। शुभाशुभ कर्म संस्कारके फल हैं। यदि हम अच्छे कर्म कर रहे हैं तो हमारे संस्कार अच्छे होंगे और हमें ऊपर खींचेंगे, यदि हमारे संस्कार बुरे होंगे तो वे हमें नीचेकी ओर खींचेंगे। हम सदा बुरे काम करते रहेंगे। एक ब्राह्मण था। उससे एक गौकी हत्या हो गयी। उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने पण्डितोंसे पूछा और जो कुछ विधान शास्त्रके अनुसार उसे बतलाया गया, उसने पूरा किया। पर सन्तोष नहीं हुआ। हत्याका पाप सिरपर सदा सवार रहता था। इसी चिन्तामें सदा व्यग्र रहता था। एक दिन किसी कसाईसे उसकी भेंट हो गयी। कसाईके पूछनेपर उसने अपनी व्याकुलताकी रामकहानी कह सुनायी। कसाई हँसा। बोला, तू मूर्ख है। एक ही मारी है। दो चार और मार डाल, तेरी हत्या आपसे आप छूट जायगी। ब्राह्मणने गोहत्या करनी आरम्भ कर दी। अब उसमें उसे पाप नहीं प्रतीत होता था। ठीक यही हालत हमारी होती है। हम

जबतक अपनी मर्यादा नहीं छोड़ते, हर तरहके डर-भय आ आकर अपना विकराल रूप दिखा जाते हैं और हमें गिरनेसे बचाते हैं। पर जहां एक बार उस ऊंचे पदसे गिरे कि फिर धीरे धीरे गिरते जाते हैं और कुछ पता नहीं लगता कि हम किस अधोगतिको पहुंच रहे हैं। हम अपना तो नाश कर ही रहे हैं, साथ ही अपना जहरीला असर समाजमें भी फैलाते हैं। और उसे भी नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं।

यह सब हमने क्यों लिखा है? केवल यह दिखानेके लिये कि सारी आपदाओंका घर चरित्रहीनता है। यदि हम एक सदाचारको नहीं बिगाड़ते तो हमारा सुख छिन्न-भिन्न नहीं होता, पर केवल सदाचारपर कुठाराघात करनेसे हम अपना सर्वस्व खो देते हैं। जीवनका मूल, आत्माकी शान्ति तो हमसे पहले ही विदा हो जाती है। एक क्षणभर हमारे पास नहीं टिक सकती।

यहाँपर यह भी लिख देना अप्रासंगिक न होगा कि सदाचार सब सुखोंका देनेवाला किस तरह है।

सबसे पहले हम आत्मगौरव सीखते हैं। जिस मनुष्यमें सदाचार नहीं है, जिसे अपने चरित्रकी परवा नहीं, वह अपनी मर्य्यादाका भी ख्याल नहीं कर सकता। इसलिये आत्मगौरवका स्वरूप पहचाननेके लिये सच्चरित्र होनेकी परम आवश्यकता है।

जीवनके सच्चे सुखको भोगनेकी योग्यता और शक्ति प्राप्त होती है।

शरीरकी शक्ति दिन दिन बढ़ती है। पराक्रमकी वृद्धिसे काम करनेकी योग्यता आती है। और हमारा शारीरिक और मानसिक बल बढ़ता है।

सच्चरित्र रहना साबित करता है कि हमने आत्मापर विजय प्राप्त कर ली है। हमने इन्द्रियोंको अपने वशमें कर लिया है। शरीरके भीतरके इन महा प्रबल शत्रुओंपर विजय प्राप्त करलेनेपर इस संसारमे हमारे लिये फिर कोई काम दुरूह नहीं रह जाता। हम जो चाहें, सुविधा और सरलतासे कर सकते हैं।

समाजके हम उज्वल रत्न हो जाते हैं। समाजको हमारा अभिमान है। उसे इस बातका गर्व है कि उसके अन्दर एक व्यक्ति है, जिसने इतनी भारी विजय प्राप्त की है। हमारी सन्तानका भविष्य उज्वल हो जाता है। वंशकी मर्यादा बिगड़ने नहीं पाती।

सदाचारीकी सब जगह प्रतिष्ठा होती है। सभी उसे ऊंची दृष्टिसे देखते हैं। उसका आदर करते हैं। उसे देखकर खुश होते हैं।

परमपिता परमेश्वर भी उससे प्रसन्न रहता है और अपनी सारी कृपाओंकी उसपर वर्षा कर देता है। क्योंकि उसे इस बातसे सन्तोष होता है कि उसने मेरी आज्ञाका पालन किया, अपना धर्म निबाहा, अपने चरित्रको सदा धवल और पवित्र रखा, किसी तरहका कलंक उसपर नहीं लगने दिया।

सारांश यह कि सदाचार स्वास्थ्य, आत्मसम्मान, योग्यता,

कर्त्तव्यपालनकी शक्ति प्रदान करती है तथा मनुष्यको ईश्वरकी कृपा और आदरका पात्र बनाती है। चरित्रहीनता पातक अर्थात् गिरानेवाली है और हर तरहसे निन्दित बनाती है। समाज भी चरित्रहीनसे घृणा करता है और परमेश्वर भी असन्तुष्ट रहता है।

ग्यारहवां विचार

पतनके परिणाम

शराबखोरी और ऐयाशी, इन दोनोंका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जहां एक होगा, दूसरा अवश्य ही अपना सिक्का जमा लेगा। शराबखोरी आरम्भ हुई कि ऐयाशीकी ओर मन बढ़ा। शराबका प्राकृतिक गुण है कामोद्दीपन। जिसने उसका सेवन किया, इन्द्रियोंपर काबू नहीं रख सकता। उनका दास बनकर उसे कलुषित मार्गका सहारा लेना ही पड़ेगा। इससे स्वभावत. यह परिणाम निकला कि समाजमें जितनी शराबखोरी प्रचलित हो, उसीके अनुसार ऐयाशीका भी अनुमान कर लेना चाहिये। वास्तवमें बात भी ऐसी ही है। दोनों बुराइयां समाजके बहुत दिनोंसे साथ साथ वर्त्तमान हैं और समाजके कोमल अङ्गका नाश कर रही हैं, पर किसीको साहस नहीं होता कि इसके समूलोच्छेदनका प्रयास करे।

समाजमें शराबखोरीने क्या रूप धारण कर लिया है, इसका अनुमान सहजमें हो सकता है। पढ़े और अनपढ़े, सभी इसकी गणना कर सकते हैं। जो पढ़े हैं, वे सरकारी सूचनाको निकालकर देख सकते हैं कि शराबकी खपत इस देशमें कितनी

है और किस हिसाबसे बढ़ती जा रही है और जो लोग अनपढ़ हैं, कलालकी दूकानपर जाकर बैठें और सप्ताह दो सप्ताह तक तमाशा देखें कि वहांसे मतवाले होकर कितने निकलते हैं और कितनी बोतलें भर भरकर वहांसे जाती हैं। एक दो कलवरियोंका दृश्य देखकर सहज ही शहर भरकी दशाका परिचय पा लेंगे और शराबखोरीका अनुमान कर लेंगे। हमारे इस लिखनेका आशय यही है कि शराबखोरी हमारे देशमें किस दशाको पहुची है, इसका पता हमलोगोंको सहजमें लग सकता है। इसको देखकर हम ऐयाशीका अनुमान कर सकते हैं, पर हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं है, जिसके द्वारा हम यह भी जान लें कि ऐयाशीमें देश कितना नीचे गिर गया है। इसका एक कारण और है। ऐयाशी लोग छिपाकर करते हैं। घरसे निकलकर जो बाजारकी ओर चला, वह अपनी परछाईंको भी सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगता है। पत्ता खड़का और बन्दा भड़का' की कहावत वे हर तरहसे चरितार्थ करते हैं। अड्डे-के निकट ४०० कदमकी दूरीपरसे ही सचेत रहते हैं। आदमी-की परछाईं देखकर ही भागते हैं। इस तरह जिस समय नवयुवक खराब होने लगता है, अपनेको गड्ढेमें गिरानेकी तैयारी करने लगता है, हमलोगोंको इसका पता नहीं लगता। आगे चलकर भी सहजमें पता नहीं लगता। हां, जिन्होंने अपना जीवन इसी तरह बिताया है, उनकी आंखोंसे तो यह बात छिपी नही रह सकती। वे तो ताड़ ही जाते हैं। पर कब? जब

रोग उस अवस्थाको पहुंच जाता है कि "अब वह नशा नहीं जिसे तुर्शी उतार दे:" अर्थात् रोग असाध्य हो जाता है और सहजमें नहीं दूर किया जा सकता।

इसका एक परिणाम और हुआ है जो समाजका नाश करता जा रहा है। शराबखोरीका पता तो हम सहजमें लगा लेते हैं और लगा चुके हैं। उसके निवारणके लिये चारों ओरसे आन्दोलन खड़ा कर रहे हैं। पुस्तकें तथा समाचारपत्रोंमे इस बातकी चितावनी छापते रहते हैं कि शराबका यह परिणाम होता है, वह परिणाम होता है, ऐसा बुरा नतीजा होता है, वैसा बुरा नतीजा होता है, देवदत्तने अपना लाखों इसीके फेरमें पड़कर गँवाया, धनञ्जयका घर-द्वार और लोटा-थाली बिक गया। पर ऐयाशीके नाम हमलोगोंने कलमतक नहीं उठायी है। इसका यही कारण है कि गुप्त होनेके कारण हमलोग इसपर जबानतक हिलानेका साहस नही करते। अगर दो चार उदाहरण जाने सुने मिलते भी हैं तो हम आंखें बन्द करके रह जाते हैं। आजकल समाजमें स्त्री-पुरुष-भेद लेकर खूब आन्दोलन मच रहा है। लोग स्त्रियोंके अधिकार, समाजमें स्त्री और पुरुषोंकी असमानता आदि लेकर घोर द्वन्द्व कर रहे हैं। कोई नहीं समझ रहा है कि इसका परिणाम क्या होगा, पर युद्ध करनेसे कोई भी बाज नहीं आ रहा है। भिन्न भिन्न नामोंसे नित नये विज्ञापन निकल रहे है। कोई स्त्रियोंके स्वत्वोंका पोषक है तो कोई समर्थक है, कोई रक्षक है तो कोई उनकी उन्नतिका बीमा

लिखाकर आगे आ रहा है। पढ़े लिखे लोग तो इस तरह संग्राममें लगे हैं और जन साधारणको उसकी परवा नहीं है कि इसका क्या हो सकता है। इधर दूसरा ही गुल खिल रहा है। हमारे समाजका आधार स्तम्भ. समाजके जीवन-का मूल, चुपचाप गुप्तरूपसे; सबकी आंखें छिपाकर उसी कुत्सित मार्गपर जा रहा है और अपने भविष्यके लिये गड्ढा खोदकर तैयार कर रहा है। पर इसकी किसीको चिन्ता नहीं है। इस समय तो अधिकारका द्वन्द्व छिड़ा है और शायद् वही सबसे प्रधान और आवश्यक प्रतीत हो रहा है। इस ओर किसी-का दृष्टिकोण फिरताही नहीं। कोई इस बातपर ध्यान ही नहीं दे रहा है कि जिनके ऊपर भावी समाजका सारा बोझ है, जो इन अधिकारोंके रक्षक होंगे, वे आज ही अपने नाशका बीज बो रहे हैं और थोड़े ही दिनमें वे गलित पलित होकर समाज-के लिये भारस्वरूप हो जायंगे और आज हमलोग जिन अधि-कारोंके लिये लड़ रहे हैं, उनका कहीं पता ठिकाना भी नहीं लगेगा। जिनके बलपर हम यह सब कर रहे हैं, वे अपने शरीरको शैतानका शिकार बनाते हैं। पहले उनकी फिकर करनी चाहिये। उनका मार्ग परिष्कृतकर, उनकी रक्षाका उपाय निर्धारितकर तब आइये और इन अधिकारोंके लिये लड़िये। पर ऐसा कोई नहीं करता। सब आंखोंमें धूल और कानमें तेल डालकर बैठ जाते हैं। जब रोग असाध्य हो गया,तब देखते हैं कि हाय! चूहेने तो जाल काट दी और हमने ध्यान

ही नहीं दिया। अब वे जालकी ओर दौड़ते हैं, पर अब पछ-
ताये क्या होता है!

प्राचीन समयके विद्वानोंका मत है कि शरीर और आत्मा दोनोंकी शुद्धता जीवनकी सफलताके लिये नितान्त आवश्यक है। जबतक आत्मा शुद्ध नही, शरीर शुद्ध नहीं हो सकता और शरीर शुद्ध न रहनेसे आत्माका विकाश नहीं हो सकता। यही बात अब भी देखनेमें आती है। एककी शुद्धता विना दूसरेकी शुद्धता नहीं रह सकती। जिसकी आत्मा पवित्र है, उसकी आत्मा प्रबल है। उसमें आत्मबल है, उसके चेहरेपर श्री है, उसके शरीरमें बल है, उसमें साहस है, धैर्य्य है, पराक्रम हैं और उत्साह हैं। पर जहां आत्माकी शुद्धता नहीं है, वहां शरीरकी भी दुर्दशा है। जिस मनुष्यने सत्पथका त्याग किया और विषयवासनाके फेरमे पड़कर कुत्सित मार्गका अवल-म्बन किया, उसकी क्या अवस्था हो जाती है। जबतक उसका पूर्णतया पतन नहीं हुआ रहता, वह यह समझता है कि मैं पाप-कर्ममें प्रवृत्त हूं, जो मार्ग मैंने ग्रहण किया है वह प्रशस्त नहीं है। इसका असर उसके मस्तिष्कपर पड़ता है और वह दिन प्रतिदिन नीचे गिरता जाता है। धीरे धीरे आत्मगौरव खो बैठता है। परिणाम यह होता है कि धीरे धीरे गुण उसका साथ छोड़कर अपना रास्ता लेते हैं, उसके उत्तम विचारोंका लोप हो जाता हैं और उसका पतन हो जाता है। कामकी ओर रुचि बढ़ानेका यही फल है। उसे यही दण्ड भोगना पड़ता है।

इनका आक्रमण एक बारगी नहीं होता। इस मार्गमें जो गया, उसमें इतना धीरे धीरे परिवर्तन होता है कि वह लख नहीं पाता। वह तो यही सोचता है मैं जैसा पहले था, वैसा ही अव हूं। इससे मेरी हानि तो हो नहीं रही है। इन्द्रियोंको इनसे सुख मिलता है। तो क्या हर्ज है, इन्हें भी रहने दो। पर ये दोप धीरे धीरे घुनकी भांति भीतर ही भीतर कोमल अङ्गोंको चुँगते रहते हैं। और एकाएक एक दिन पता लगता है कि हम क्या थे और क्या हो गये। उस दिन वह व्यक्ति पछताता है, हाथ मलता है। पर क्या लाभ? उस नष्ट हुए जीवनको वह फिर नहीं पा सकता। जिन अङ्गोंमें रोग लग गये, उन्हें वह अब नहीं सँवार सकता। उसके हाथसे सब बाहर हो गया। जरा डाक्टरोंसे मिलिये और उनसे पूछिये। देखिये, कैसी करुणाजनक कहानियां सुनाते हैं। सुनकर रोंगटे खड़े हो जायंगे, मुंहसे एक सर्द आह निकल जायगी। और किसी मन्दिरके सच्चे पुजारीके पास जाइये। उससे भी पूछिये, वह भी आपको तुरत बतला देगा कि विषयोंमें लीन नवयुवकोंका धार्मिक पतन किस दर्जे तक हो जाता है। सबसे दुःखकी बात तो यह है कि जो इसमें एक बार भी फंस जाता है, वह आंख खुलनेपर भी इससे निकलकर अपनी रक्षा नहीं कर सकता।

आत्माके प्रति यह सबसे भीषण पाप है, क्योंकि जितनी गहरी छाप इसकी पड़ती है, जितना भीषण ह्रास इससे होता है, उतना और किसीसे नहीं। यह आत्माको मृतक और निर्जीव

बना देता है। इसके बोझसे दबी हुई आत्मा फिर कभी नहीं उठ सकती। एक बार गिरी सो सदाके लिये गिरी। कालान्तर में भी इसके उठनेकी आशा नहीं रह जाती। जबतक इसका विषैला जहर अंग-प्रत्यंगमें नहीं फैल जाता, हमें होश नहीं आता, हम सचेत होकर नहीं उठ बैठते। पर तबतक जो असर फैल गया रहता है, वह आत्माको इस तरह मुर्दा बना देता है कि उसके उत्थानके लिये इस जीवनमें पर्याप्त समय ही नहीं रह जाता। हमलोग जानते हैं कि हमें अपने शुभाशुभ कर्मोंका ब्यौरा उस परमपिता परमेश्वरको देना पड़ेगा। इस संसारमें हमें उसने भेजा तो हमने क्या किया, इसका हिसाब हमें पेश करना पड़ेगा। उसीके अनुसार वह हमारा फैसला करेगा। कहीं ऐसा न हो कि हम इन्द्रियोंके सुखमें लिप्त हों, सम्हल भी न सके हों और उसके यहांसे बुलाहट आ जाय। उस समय क्या गति होगी? जो कुछ हमने किया है, उसीके अनुसार वह हमारा फैसला कर देगा और हमारे पापोंको देखते हुए वह हमें ऐसे भीषण नरकागारमें क्यों न दे, जहांसे हमारा उद्धार ही न हो सके! हमें जो दण्ड मिले थोड़ा है।

इसलिये हमें पहलेहीसे सतर्क रहना चाहिये। हमें हर-दम यह ध्यान रहना चाहिये कि हम सब ईश्वरकी सन्तान हैं। उसकी दृष्टिमें सब बराबर हैं। अगर हम किसीकी मर्यादा बिगाड़ते हैं तो हम उतने ही पापके भागी होते हैं जितने अपने सगे भाई या बहिनकी मर्यादा बिगाड़कर पापके भागी होंगे।

इस तरह हम अपने जीवनको परम पवित्र रख सकेंगे और अपनी आत्मापर किसी तरहकी कालिमा नहीं लगने देंगे। पवित्र जीवनको वही सार्थक कर सकता है, जिसने इस शरीरको पाकर किसी तरहका अनाचार या कलुषित काम नहीं किया है। अपनी इन्द्रियोंको स्खलित नहीं होने दिया है। आत्मापर किसी तरहका लाञ्छन नहीं लगने दिया है। और सबसे बढ़कर जानमें या अनजानमें कोई ऐसा कर्म नहीं किया है, जिससे मनुष्य या ईश्वरके सामने आँखें नीची करनी पड़ें। जिसने कुवासनाओंसे मन हटाकर इन्द्रियोंको कुमार्गमें जानेसे रोका, सदा पवित्र जीवन बिताया, वही बुढ़ापेमें सुख-शान्तिसे रह सकता है।

बारहवां विचार

— ❀ —

यौवनके आतंक

मनुष्यको पवित्रताका बोझ सबसे अधिक कष्टकर मालूम देता है। वह समझता है कि पवित्रताके नामपर हमें बांध दिया गया है कि हम भाग न सकें और बन्धनको वह उतना ही दुख-दायी समझता है, जितना बैल नाथको समझता है। मनुष्य समझता है कि इसकी बदौलत हमारी नकेल समाजके हाथमें है। परिणाम यह होता है कि मानव-प्रकृति सदा इसे तोड़कर फेंक देनेकी चिन्तामें रहती है। मनुष्य सदा यत्न किया करता है कि किस उपायसे वह पवित्रता या निर्मल जीवनके बन्धनको तोड़कर स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करे। प्रत्येक क्षण हम इस बन्धनको अनुभव करते हैं, जब कभी इन्द्रियोंको तृप्त करनेकी इच्छा करते हैं, हमें चपत लगती है और हम सचेत किये जाते हैं कि देखो अपने पवित्र चरित्रपर धब्बा मत लगाना, हमे विवश होकर पीछे हटना पड़ता है। उस समय हमारी यही इच्छा होती है कि इस बन्धनमें हम नाहक बँधे। किसने हमें इस तरह जकड़ दिया। क्या ही अच्छा होता अगर इससे हमारा किसी तरह छुटकारा होता। इससे मुक्तिलाभ करनेमें ही हमारा कल्याण है। हम बराबर अवसर ढूंढा करते हैं। जरा भी मौका मिल गया कि हम छलांग

मारकर फन्देसे बाहर निकलकर अलग खड़े होनेके लिये तय्यार रहते हैं। हमारी खुली चेष्टायें और प्रेरणायें भी सदा इसे तोड़नेके लिये होती हैं। जिस तरह किसी बातके लिये जिद्द पकड़ लेते हैं तो उसके प्रतिकूल काम करेंगे ही, चाहे उससे हमें हानि ही क्यों न पहुंचे। इसी तरह जब जब जहां जहां अवसर मिलता है, हम पवित्रताको तोड़नेका ही यत्न करते हैं।

हमने देखा कि पापकी ओर मनुष्य-जीवनकी प्रवृत्तियां और तदर्थ प्रयास उसके निर्मल या पवित्र जीवनपर काला धब्बा लगानेको प्रबल होते हैं। प्रेरणायें खींचती हैं। उसमें फँसनेकी सम्भावना भी अधिक होती है। समाजकी जो हानि इस प्रकार हो रही है, उसका वर्णन शब्दोंमें नहीं हो सकता। यह समाजके कोमल अंगोंको खाती जा रही है। कलियां खिलने नहीं पातीं कि मुरझा जाती हैं। जो उज्वल रत्न पृथ्वीके सपूत कहलानेके योग्य होते हैं, उसके लिये भार हो जाते हैं। चाहे जिस पहलूसे इस प्रश्नपर विचार कीजिये, निराशा ही निराशा दिखायी देती है। चारों ओर अन्धकार ही फैला दिखायी देता है। कहीं कहीं तो इतने भीषण परिणाम हो गये हैं, कि कल्पनामें नहीं आ सकते। अगर किसी चरित्र-सुधारकसे इस सम्बन्धकी चर्चा कीजिये तो वह अपना रोना रोने लगता है कि सदाचार उठता चला जा रहा है। इसकी किसीको परवा नही है। युवक पूर्ण यौवनका विकास होनेके पहले सदाचारके बन्धनको तोड़कर भागनेकी फिकरमें इतने गहरे गड्ढेमें जा गिरते हैं कि फिर उद्धार ही नहीं

हो सकता। यही सब बातोंके मूल हैं। इन्हींपर सारा दारमदार है। जब इनकी ही यह अवस्था है तो औरोंके बारेमें क्या कहा जा सकता है। किसी समाज-सुधारकसे पूछिये तो वह अपना रोना अलग रोता है कि समाजका बन्धन दिन प्रतिदिन ढीला होता जा रहा है। सदाचारकी रस्सी ऐसी दृढ़ थी कि इसमें सभी एक सूत्रमें बँधे थे, पर अब तो इसे तोड़ तोड़कर निकल भागनेका प्रयत्न कर रहे हैं और एकताकी वहां शृंखला टूटती जा रही है। समाजका भविष्य अन्धकारमें है। उसकी रक्षाकी कोई आशा नहीं है। किसी शरीर-विज्ञानके पण्डितसे पूछिये तो वह सबसे आर्त्तक्रन्दन करेगा। शारीरिक ह्रासका प्रमाण सबसे प्रबल और प्रत्यक्ष है। सदाचारके लोपसे जो हानि इस तरफ हुई है,कहीं नहीं हुई है। यही भूमि है, यही देश है, वही अन्न, वही जल और वही वायु है। इसी भूमिपर अर्जुन और कर्ण उत्पन्न हुए थे और इसी भूमिपर आज उन्हीं अर्जुनकी हजारों सन्तान उत्पन्न हो रही हैं। कितनी भीषण विषमता है। एक अभिमन्यु था कि माताके गर्भमें ही उसने चक्रव्यूहके भेद करनेका हाल जान लिया था और एक आजकलकी सन्तानें हैं कि जन्म ग्रहण करते ही दाई और डाक्टरोंकी शरण जाती हैं। यह वीर्यका दोष है। वे लोग सदाचारी थे, वीर्यकी रक्षा करते थे। इसी लिये उनकी सन्तानें उत्तम होती थीं। हमने सदाचारको बन्धन समझकर छोड़ दिया। परिणाम प्रत्यक्ष है कि उसके न होनेसे अनेक तरहकी यातनायें भोग रहे हैं। एक वार इन्द्रलोकमें अर्जुन गये।

इन्द्रकी सभामें उर्वशी नाचनेके लिये आयी। अर्जुनने उसकी ओर विस्मित नेत्रोंसे देखा। नृत्य समाप्त होनेके बाद जब अर्जुन अपने शयनागारमें गये तो सजधजकर आरती लिये उर्वशी उनके पास पहुंची। उसे देखकर अर्जुन चकित हो गये। पूछा—"मां, क्या आज्ञा है।" उर्वशीने कहा—"आपने बीच सभामें मेरी ओर तृषित नेत्रोंसे देखा था। इसीसे मैं आपकी सेवा करनेके लिये उपस्थित हुई हूं।"

अर्जुन सदाचारकी मर्यादा जानता था। उसका चरित्र ऊंचा था, पवित्र था, दृढ था। उसने चट कहा, नहीं मा! आपने भूल की। आपका नाम सुनकर मुझे अपने वंशका स्मरण हो आया और मैंने विस्मयसे देखा कि क्या यही उर्वशी अप्सरा हैं, जिनसे मेरे वंशकी उत्पत्ति है?" उर्वशी कामसे आतुर थी, अर्जुनको दृढ़ देख उसने शाप दी और चली गयी। पर आजकल हमलोगों-की क्या हालत है? इस तरह पास आना और अनुनय-विनय करना तो दूर रहा अगर कोई रमणी आंखभर ताक दे तो बस हमारे प्राण शरीरसे निकल जाते हैं। उसके पीछे पीछे भागने लगते हैं। इस विषयमें हमारा समाज कितना गिर गया है, नहीं कहा जा सकता। धर्माचरणके बहाने, गंगा-स्नानके बहाने, देव-पूजाके बहाने हमलोग अपने सदाचारको, पवित्र आचरणको किस प्रकार कलंकित करते जा रहे हैं, नहीं कह सकते। इसका असर समाजपर और भी बुरा पड़ रहा है। जिस तरह एक गन्दी मछली सारे तालाबके जलको नष्ट कर देती है, उसी प्रकार एक

चरित्रहीन मनुष्य समाजका नाश कर देता है। मनोविज्ञानके पण्डितोंका मत है कि पापी मनुष्य अपने शरीरसे सांसद्वारा जो वायु निकालता है वह वायु भी दूषित होती है। उस वायुका संसर्ग जिन लोगोंसे होगा वे भी उसी तरह कलुषित विचारके हो जायँगे। वह जिससे बात करेगा या संसर्ग रखेगा, उसके विचार कलुषित हो जायँगे, जो उसका अन्न खायगा, उसका भी विचार उसी तरह कलुषित हो जायगा। इस तरह उसकी कुसंगतिका असर पहले उसके घरवालोंपर पड़ेगा, फिर बन्धुबांधवों और इष्ट मित्रोंपर पड़ेगा। धीरे धीरे सारा समाज उसकी तरह कलुषित विचारवाला हो जायगा। यह बनावटी नहीं है, इसका फल हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

एक बार हृदयमें यह बात उठती है कि मानव-संसार तो उदाहरणों और नजीरोंपर ही चलता है तो फिर उसका उद्धार क्यों नहीं होता। हम भी देखते हैं और आप भी देखते हैं कि बुरे कामका बुरा नतीजा हमें प्रतिदिन भोगना पड़ रहा है, जैसा काम हम करते हैं, उसके अनुसार हम फल भोगते हैं, कुकर्म करके हम सुखी नहीं रहते; बल्कि अनेक तरहकी शारीरिक और मानसिक यन्त्रणाओंके शिकार बन जाते हैं, फिर भी हम अपना उद्धार क्यों नहीं करते। इस दूषित मार्गसे क्यों नहीं मुंह मोड़ते। यह देखकर भी कि जिसने सदाचारको बन्धन समझकर उसे तोड़ा, उसकी दुर्गति हो रही है, हम क्यों उससे मुक्ति पानेके प्रयासी बने रहते हैं। क्यों नहीं उसीको सर्वोच्च मानकर स्वीकार

कर लेते। पर ऐसा कौन करता है। प्रतिदिन वही धन्धा लगा है, प्रतिदिन वही पतन देखनेमें आता है बल्कि उसका वेग और भी बढ़ता जा रहा है मानों हमलोग या तो सदाचारकी महत्ताको जानतेही नहीं अथवा उसकी श्रेष्ठतामें विश्वास नहीं करते।

सेनाका निर्माण कितने महत् उद्देश्यसे किया जाता है। सैनिकके ऊपर देशकी रक्षाका भार है। वह सदा सतर्क रहकर शत्रुको दूर रखनेके यत्नों और साधनोंको ढूंढ़ा करता है। देशकी समृद्धिका सारा दारमदार उसीके ऊपर है। इसीमें सैनिककी श्रेष्ठता है और सैनिक जीवनका उत्कर्ष है। क्षत्रियोंको इतना ऊंचा आसन इसीसे दिया गया है। रक्षा करनेका काम बड़े महत्वका है। पर वर्तमान समयमें सैनिकोंकी क्या हालत है। कहते लज्जा आती है। स्मरणकर सिर झुक जाता है। सैनिकोंका आचरण सबसे पतित होता है। सदाचारको वे विडम्बना समझते हैं। उनका चरित्र एकदम भ्रष्ट होता है। दस बरस पहलेकी बात है। अगर दौरा करती हुई कोई सैनिक टोली देहातोंके आसपास पड़ाव डाल देती थी तो आसपासके गांवोंमें आतंक छा जाता था। बहू बेटियोंका घरसे निकलना कठिन हो जाता था। ग्वालोंकी स्त्रियां बाजारोंमें दूध लेकर जाना बन्द कर देती थीं क्योंकि उन्हें अपमानित होनेका भय था। भला जो अपने चरित्रकी रक्षा नहीं कर सकता, जिसमें इतना बल नहीं कि अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखे वह देशकी रक्षा क्या करेगा,

शत्रुपर काबू क्या रखेगा। स्वयं नहीं सम्हलता तो परायेको वह क्या सम्हालेगा।

यह तो हुई सेनाकी अवस्था। अब स्कूलोंकी दशापर जरा विचार कीजिये। हम बड़ी बड़ी आशायें लेकर लड़कोंको स्कूलोंमें भेजते हैं। उन्हें आदर्श स्थान मानकर लड़केका सारा भविष्य उन्हींके ऊपर छोड़ देते हैं। पर लड़का जिस अवस्थामें लौटता है उसकी कल्पना कर यही कहना पड़ता है कि या ईश्वर इसे घर-पर रखकर मूर्ख ही रहने देते तो अच्छा होता। पढ़ना लिखना ही जीवनका सार नहीं है। सदाचार ही सबसे प्रधान गुण है। यदि उसका लोप हो गया तो अन्य गुणोंका होना न होना बरा-बर है। स्कूलमें जाकर बालक चाहे अन्य गुणोंमें परिपूर्ण अवश्य हो जाय पर सदाचारसे हाथ धो आता है। अपना जन्मसिद्ध गुण खोकर आता है। कितने परितापकी बात है। हम भेजते हैं सीखनेके लिये और वह लौटता है खोकर। उलटे लेनेके देने पड़ जाते हैं।

हमने इन दो संस्थाओंका उदाहरण केवल इसलिये दिया है कि ये दोनों प्रधान संस्थायें हैं जिनमे युवकको जाना ही पड़ेगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि हमें इससे अपनी रक्षा किस तरह करनी चाहिये। क्या उपाय है कि हम इस प्रलोभनको दूर रख सकें और इसका अपने ऊपर असर न पड़ने दें। कौनसी युक्ति लगावें जिससे हमलोग सदाचारकी रक्षा कर सकें।

चरित्रका पतन न होने दें। इस समय सबसे प्रधान काम यही है। सबसे अधिक दत्तचित्त इसी ओर होनेकी आवश्यकता है। अगर हम इसकी चिन्ता नहीं करते तो हमें इस संसारसे मुंह मोड़ लेना चाहिये। इसके सुधार विना जीवनका सारा काम सारहीन है। या तो हमें इसकी रक्षाका उपाय करना चाहिये या हमें खुले तौरपर यह घोपणा कर देनी चाहिये कि वर्त्तमान युग सदाचारका युग नहीं है। चरित्रभ्रष्टता ही इस युगका प्रधान लक्ष्य है। वर्तमान सभ्यता एक प्रकारका आवरण है जिससे हमलोगोंने वर्तमान समाजकी पतितावस्थाको ढंक रखा है, जिससे परदेकी आड़में सारा काम होता रहे और किसीको घृणा करने या थूकनेका अवसर न मिले। पर इतना स्मरण रखना चाहिये कि यदि इस काममें थोड़ी भी असावधानी की गई तो मानव समाजका नाश अवश्यम्भावी है। समाज दिन दिन नीचे गिरता जा रहा है। एक दिन उसे अन्तिम ठेस लगेगी और वह सदाके लिये रसातलमें चली जायगी। जबतक प्रत्येक व्यक्तिके घटमें सदाचार और पवित्रताके भाव नहीं समाते, जब-तक प्रत्येक मनुष्य अपने चरित्रको निष्कलंक रखना और साथ ही समाजकी महिलाओंकी पवित्रताकी रक्षा करना अपना परम कर्तव्य नहीं समझता, समाजका कल्याण नहीं हो सकता। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको—चाहे वह पुरुप हो या स्त्री—पवित्रताका जीवन विताना अत्यन्त आवश्यक है। अगर समाजके कल्याणकी तनिक भी लालसा उनके हृदयमें है

तो उन्हें हर तरहसे पाक साफ और निर्मल रहना चाहिये। उनके विचार शुद्ध होने चाहिये। उनके वचन शुद्ध होने चाहिये और उनका जीवन शुद्ध होना चाहिये। स्मरण रखिये, शुद्ध विचार, शुद्ध वचन और शुद्ध जीवन तीनोंपर बराबर जोर दिया गया है। एकसे काम नहीं चल सकता। शुद्ध विचार सबसे प्रधान है। कर्मेन्द्रियोंकी प्रेरक ज्ञानेन्द्रियां हैं। किसी कामके करनेके पहले हम उसकी धारणा करते हैं अर्थात् पहले हृदयमें कोई विचार उत्पन्न होता है तब हम उसका मनन करते हैं। मनन करते करते वह जम जाता है फिर हम उसपर आचरण करते हैं। मनके विचारोंके अनुसार आचरण कर हम उसकी सार्थकता चरितार्थ करते हैं। इससे अगर मनमें कोई भाव उत्पन्न न होनेका अवसर दिया जाय तो उसके चरितार्थ करनेका अवसर नहीं उपस्थित होगा। यही बात वचनके साथ भी है। आपका हृदय कितना ही निर्मल क्यों न हो, आपके विचार कितने ही शुद्ध क्यों न हों, आपका आचरण किताना ही निर्मल क्यों न हो पर आपकी पहली कसौटी तो आपकी बोली है। आपके उच्चारण किये हुए शब्दोंके अनुसार ही आपकी जांच आरम्भ होगी। हृदयको कौन देखता है। आचरणका प्रथम सूत्र बोलचाल है। अगर आप प्रतिष्ठित आदमी हैं, समाजपर आपका प्रभाव अधिक है तो आपकी बातोंसे अर्थका अनर्थ हो सकता है। आपके कथनके भ्रममें पड़कर लोग अनर्थ कर सकते हैं। लोगोंके दिलमें विचार उत्पन्न होगा कि यह हमलोगोंके प्रमुख

हैं। इन्हींके पीछे पीछे हमें चलना है। जिस मार्गका अवलम्बन इन्होंने किया है वह मार्ग अवश्यही परिष्कृत होगा, जो बात ये कहते हैं अवश्य ही अच्छी होगी। इसलिये हम लोगोंको इन्हींके कहे मार्गका अनुसरण करना चाहिये। इसलिये शुद्ध वचन भी उतनाही आवश्यक है जितना शुद्ध जीवन। घर घर इसकी शिक्षा होनी चाहिये। हर स्थानपर इसकी चर्चा होनी चाहिये। सबको इसकी महत्ता समझनी चाहिये। सदाचारमें क्या बल है, प्रत्येक व्यक्तिको समझना चाहिये। उन्हें यह बात भलीभांति समझ लेना चाहिये कि यदि वे सच्चा सुख, सच्ची शान्ति और सच्चा आनन्द चाहते हैं तो उन्हें सदाचारको न भूलना चाहिये। इसीमें सच्चा सुख है। इसीमें बल है और पराक्रम है। तो हमें अपनी रक्षा किस तरह करनी चाहिये। हम क्या करें जिससे हमारा सदाचार बिगड़ने न पावे। हम अपवित्रताके फन्देमें न फंस सकें। हमारी तुच्छ बुद्धिमें इसके दो ही उपाय हैं और इन्हीको काममें लाकर हम अपनी रक्षा कर सकते हैं। पहला उपाय तो यह है कि हमें अपने मनकी प्रवृत्तियोंके दरवाजेपर एक पहरेदार बैठा देना चाहिये, जो सदा सावधानीसे पहरा देता रहे, कभी गफलत न करे। प्रतिक्षण देखता रहे कि भीतर कौन जाता है और बाहर कौन आता है। बदमाश, लुटेरे, डाकू तो धोखा देकर घुस नहीं जाते और अमूल्य रत्न चुराकर बाहर निकल आते हैं। यह पहरेदार है, जागृत आत्मगौरव। दूसरी ओर हमें अपने मनको दृढ़ करना चाहिये जिससे विकारोंका

प्रभाव उसपर न पड़े और वह किसी अवस्थामें विचलित न हो। सदाचारिक तथा शारीरिक नियमोंकी अद्वैततापर हमें दृढ़ होना चाहिये। हमें अपने मनमें यह निश्चय कर लेना चाहिये कि सदाचार तथा शरीरके लिये जितने नियम बने हैं, पूर्ण हैं, अनिवार्य हैं तथा उनमें किसी तरहका परिवर्त्तन नहीं हो सकता। दूसरे हमें यह बात भी सदा मनमें रखनी चाहिये कि जो कुछ हम यहाँ करेंगे उसका हिसाब हमें ईश्वरके दरबारमें देना होगा और उसके अनुसार वह हमें दण्ड देगा। मनकी प्रवृत्तियोंको कुमार्गमें जानेसे रोकनेके लिये यह भी एक अमोघ अस्त्र है। जहां कुछ असर नहीं करता वहां डर असर करता है। डरके सामने किसीकी नहीं गलती। इसलिये दण्डका भय प्रवृत्तियोंको कुमार्गमें जानेसे अवश्य रोकेगा चाहे कुमार्गमें जानेकी प्रेरणा कितनी ही प्रबल क्यों न हो।

यह सब होते हुए भी जिसकी आंखें नहीं खुलतीं और जो अपना कदम उस घृणित कामकी ओर बढ़ाता ही है उसे इस कुकर्मका क्या फल भोगना पड़ेगा। इस करनीके लिये उसे दण्ड अवश्य भोगना पड़ेगा। दण्डसे वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता। दण्ड भी एक प्रकारका नहीं है। अनेक प्रकारके दण्डोंको उसे भोगना पड़ेगा। सबसे पहले तो समाजमें वह आंख उठाकर किसीके सामने देखने लायक नहीं रह जायगा। शर्मसे उसकी आंख झुक जायंगी, उसकी आत्मा कहेगी, तुमने किया है, समाजके साथ विश्वासघात किया है, तुम्हारे

ऊपर विश्वास कर इन्होंने तुम्हें अपनेमें शामिल किया और तुमने इनके कोमल अङ्गोंमें छेद दिया है। इस ख्यालसे एक तरहकी ग्लानि आवेगी और तुम्हें लज्जा लगेगी। तुम्हारी स्थान स्थानपर बेइज्जती होगी। तुम्हें भ्रष्ट और पतित जानकर तुम्हारे संसर्गसे लोग दूर रहेंगे। अपने बच्चोंको तुम्हारे साथ बैठने नहीं देंगे, तुम्हारा कोई स्वागत नहीं करेगा, तुम्हें देखकर सब मुंह फेर लेंगे। बीमारियोंके तुम शिकार बन जाओगे। तुम जानते हो कि तुम्हारे शरीरमें अनेक तरहकी बीमारियां आसन जमाकर बैठी हैं। जिस समय तुम्हें कमजोर पावेंगी वे तुमपर आक्रमण कर बैठेंगी। वीर्यनाशसे शरीरमें कमजोरी आती है, उसके विषयमें कुछ लिखना व्यर्थ है। इसके अलावा इसके संसर्गसे गर्मी सुजाक आदि घृणित बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं जिससे रक्षा पाना अतीव दुष्कर है। एक बार अपना रूप दिखानेका जहां उन्हें अवसर मिला तो फिर वे पिण्ड छोड़नेवाली नहीं हैं। कितने आदमी इन बीमारियोंके शिकार होकर अपनी हरी भरी जवानीसे हाथ धो बैठे हैं। इस अधम और निकृष्ट जीवनसे, मुक्ति लाभ करनेके लिये कितने नवयुवकोंने अपने हाथों अपना गला काटा है। अपने मनमें भले ही कल्पना कर लो कि इतने डाक्टरों वैद्यों और हकीमोंके रहते भला इतनी यातना कैसे उत्पन्न हो सकती है। बीमारीके दर्शन होते ही वैद्यजीसे एक पुड़िया ले लेंगे, अच्छे हो जायंगे, नहीं तो आजकल पिचकारी तो चली ही है। दो पिचकारीमें

सब जहर शरीरसे गायब हो जायगा। पर यह भ्रममात्र है। पापके दण्डसे कोई वैद्य या हकीम नहीं बचा सकता। भला आजतक 'आक बोकर भी आम तोड़ते किसीने देखा है। बबूल रोपोगे तो कांटा अवश्य गड़ेगा।' यह अनिवार्य्य है। किसी बड़े भारी विद्वानने लिखा है "पापका दण्ड मृत्यु है"। यह चरित्र-हीनके लिये जितना प्रत्यक्ष घटित होते देखा गया है और कहीं नहीं। इस मार्गका जिसने अनुसरण किया उसकी शारीरिक मानसिक और आत्मिक- तीनों तरहकी मृत्यु हो जाती है। इसे पत्थरकी लीक समझो, इसमें किसी तरहका मीनमेष नहीं हो सकता। मनुष्यको तुम चाहे धोखा दे लो, उसकी आंखोंमें धूल झोंक लो, वह तुम्हारा कुछ न कर सके, पर ईश्वरकी आंखोंमें तुम धूल नहीं झोंक सकते। वह तुम्हारे धोखेमें नहीं आ सकता। उसे चकमा नहीं दिया जा सकता। वह तो अपना कठोर वज्र तुमपर चलावेगा और तुम्हें मृत्युका दण्ड देगा। जो लोग अपवित्र और असदाचारिक जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें कविवर दान्तेकी चेतावनी सदा याद रखनी चाहिये ; जो लोग इस पथके पथिक बननेकी कामना रखते हैं उन्हें आशाको पहले ही तिलांजलि दे देना चाहिये। निराशाको आलिंगन करके ही उन्हें इस द्वारसे होकर गुजरना चाहिये। इस घृणित और पापमय जीवनके कारण जो जो कुत्सित और दुःख-दायी बीमारियां हो जाती हैं यदि उनका ही सम्पूर्ण और विस्तृत विवरण समाजके सामने रखकर उन्हें दिखाया जाय कि

जो कोई इस तरहका आचरण करता है उसे निम्नलिखित बीमारियोका सामना करना पड़ता है। इस तरह उसके अंग सड़ जाते हैं उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। जिस समय कीड़े उसके शरीरको चालने लगते हैं वह मौतसे भी भीषण यन्त्रणाका अनुभव करता है तो हमें पूरी आशा है कितने युवक और युवती इसके भयानक परिणामका स्मरण कर सहम जायंगे और उस रास्तेपर कभी भी नहीं जायंगे और अगर गये होंगे भी तो वहींसे अपना कदम पीछे हटावेगें और हर तरहका यत्नकर उससे मुक्ति लाभ करेंगे। फिर चाहे कैसा भी भीपण प्रलोभन क्यों न हो वे कुत्सित चेष्टाओंकी ओर आँख उठाकर देखेगें भी नहीं। सदा स्वच्छ सदाचारिक जीवन बितावेंगे। इस दोपसे जो बीमारियां उत्पन्न होती हैं उनका प्रभाव बड़ा ही भीषण होता है। 'आप गये और घालहिं आनहिं' इनके संबंधमें सोलहो आना चरितार्थ होता है। अपना तो सर्वनाश किया। ऐसा रोग खरीदा जिससे उद्धार पाना कठिन है। अपने हाथों अपना नाश किया, पर साथ ही अपनी सन्ततिको भी डुबोते गये। ये बीमारियाँ वंशपरम्पराके साथ कमसे कम तीन पुश्ततक चलती हैं। बिचारी पत्नीका तो उद्धार हो ही नहीं सकता। वह तो निर्दोष होकर भी पतिके कुत्सित आचरणके पापकी भागिनी होगी। आपको हजारों और लाखों उदाहरण ऐसे मिलेगें जहां पिता या माताके दुराचारका फल तीन तीन चार चार पीढ़ीतक पुत्रों और पौत्रोंको भोगना पड़ा है। इस देशमें तो अभी भी कल्याण है।

यूरोपीय देशोंकी दशा तो इतनी गिर गयी है कि ९८ प्रति सैकड़े मनुष्य इस घृणित रोगके शिकार होते देखे गये हैं। ४।५ वर्षके बच्चे भी गरमी और सूजाकसे पीड़ित हैं। अनुसन्धान करनेपर यही मालूम हुआ है कि किसीकी माता और किसीके पिता अथवा दाई ही इस रोगसे पीड़ित रही हैं और उनके संसर्गसे बालकको यह रोग हो गया है।

क्या इन सब भीषण परिणामोंको देखकर भी हमें शिक्षा नहीं ग्रहण करनी चाहिये ? क्या हमें उचित नहीं है कि हम इस अवस्थासे सदा अपनी रक्षा करते रहें ? यह किस तरह संभव है ? प्रत्येक नर और नारीको कामतृष्णाका दमन करना चाहिये। उसे नाथकर मजबूत रस्सीसे अपने दरवाजेपर अपनी आँखोंके सामने बांधकर रखना चाहिये जिससे वह छुड़ाकर भाग न जाय और साथ ही अतिशय पवित्र जीवनयापन करना चाहिये।

बहुधा शिकायत सुननेमें आती है कि इस पतित मार्गकी ओर पुरुषोंका झुकाव अधिक है। कामका प्रभाव उनपर इतना प्रबल होजाता है कि उसके वशीभूत होकर वे प्रकृतिगत लज्जाको खो बैठते हैं और पागलोंकासा व्यवहार करने लगते हैं। स्त्रियोंको देखकर वे बोली बोलने लगते हैं। उनसे छेड़ छाड़ करते हैं और अनेक तरहके प्रलोभनोंमे उन्हें फंसा कर उनका सर्वनाश करते हैं। आप भी गिरते हैं और उन्हें भी गिराते हैं। स्त्रियोंमे स्वभावगत लज्जा इतनी अधिक होती है कि वे अपने मुंहसे कुछ कह नहीं सकतीं, जबतक किसीसे प्रेरित न की जायं। इस

पापाचारकी ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। इसलिये यदि पुरुष समाजमें सुधार हो जाय तो इस पापसे समाजका उद्धार हो जाय। इसे हम स्वीकार करते हैं। पुरुषोंपर इसकी जिम्मेदारी अधिक है। परस्त्रियां सर्वथा निर्दोष नहीं है। कोई भी विचारवान पुरुष यह कहनेको तैयार नहीं हो सकता कि स्त्रियां किसी तरहकी प्रेरणा नहीं करतीं। हम तो यह दृढ़ताके साथ कहनेके लिये तैयार हैं कि वर्तमान समयमें स्त्रियां भी मूक प्रार्थना किया करती हैं, पुरुष उनकी मूक प्रार्थनाको समझकर ही उनकी ओर अग्रसर होनेका साहस करता है। इस मूक प्रार्थनाके कई लक्षण हैं। हम संक्षेपमें उन लक्षणोंका वर्णन कर देना चाहते हैं। पराये पुरुषकी ओर अप्राकृतिक दृष्टि, भाव भंगी, सौंदर्य्य प्रदर्शन, इत्यादि। उचित परदेकी रक्षाकी जिम्मेदारी स्त्रियोंपर भी है। ऐसे महीन कपड़े पहना जिनसे अंग दिखाई पड़ें कुलीन महिलाका काम नही है। गंगाजी स्नानकरके वदनसे लिपटे उसी महीन भींगे कपड़े को पहने वाहर निकलती हैं। क्या यह निर्लज्जता नहीं है और क्या इसका प्रभाव देखनेवालेपर खराव न पड़ेगा? शहरोंकी दशा तो सवसे गई वीती हैं। कितने दृश्योंका वर्णन किया जाय, एकएकका स्मरण कर लज्जा आती है और सिर नीचा हो जाता है। इसके अलावा कितनी सामाजिक कुरीतियां अभी तक प्रचलित हैं जिनका त्याग करनेके लिये स्त्रियां तैयार नहीं हैं। उनके कारण भी सामाजिक ह्रास कम नहीं हो रहा है। उनमें सवसे प्रधान गाली गानेकी प्रथा है। खास खास रिश्ते-

दारोंके आनेपर स्त्रियां गाली गाती हैं। हा! कैसा पतन है! पिता, और चाचा तथा माता और पुत्र तकके सामने स्त्रियां कुत्सितसे कुत्सित शब्द मुंहपर लाते नही शर्मातीं। क्या यह उत्तेजक नहीं है। क्या यह कुप्रवृत्तिको जगानेमें सहायक नहीं होता? हम यह नहीं कहते कि सभी स्त्रियां इसी तरहकी हैं, सबपर इस तरहके कलंक लगाये जा सकते हैं, पर ऐसी अवस्था है, इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता।

हमारे इस वर्णनपर लोग नाक भौंह सिकोड़ेंगे और कितने सदाचारके अन्धे प्रेमी तो हमें गालियां भी देंगे कि हमने गन्दी बातें लिखनेका साहस किया है। पर हम दावेसे कह सकते हैं कि ऐसी बातोंकी नितान्त आवश्यकता हैं। आजतक यह कुरीति इस तरह सर्वनाश कर रही हैं इसका एक कारण यह भी है कि इसके प्रतिकूल आवाज उठानेका, इसपर कटाक्ष करनेका किसीने साहस नहीं किया है। दोषको देखा है और आंख बन्दकर लिया है। अगर आरम्भमें ही इस तरहकी आलोचना और प्रत्यालोचना कर दी गयी होती तो हमें पूरी आशा है कि आज यह नौबत न आती।

यूरोपीय सभ्यताके प्रभावसे अब धीरे धीरे वेष भूषामें भी इतना परिवर्तन हो गया है कि कहीं कहीं यह भी ख्याल नहीं रहता है कि हमारा कौन अंग ढका है और कौन खुला है। इसका क्या अभिप्राय है? कपड़ा पहना जाता है अंग ढकनेके लिये। फिर यह आधा खुला और आधा बन्द क्यों?

हीनचरित्रा इस प्रकार पुरुषोंको लुभानेके लिये अपनी लज्जाका विचार नहीं करतीं। वेश्याओंमें ऐसी बात खुल्लमखुल्ला देखी जाती है। मोहनीरूप बनाकर युवकोंको अपने कपट जालमें फंसाना ही उनका पेशा है। अगर इस तरहका शृंगार न करें, इशारेबाजीका अभ्यास न करें, तड़क भड़क न रखें तो उनकी कद्र कौन करे! यह समाजके अंगके व्रण हैं जिनपर मक्खियां बैठती हैं। पुरुषोंको बिगाड़नेकी जिम्मेदारी एक हदतक ऐसी स्त्रियोंपर भी है।

अन्तमें हम एक बात और लिख देना चाहते हैं। आजकल साहित्यका युग विकास और वृद्धिपर है। सामाजिक तथा गार्हस्थ्य आदि विविध नामोंसे नित नये उपन्यास निकल रहे हैं। उनमें पुरुषों तथा स्त्रियोंके कुत्सित मार्गपर जानेका कुपरिणाम दिखाया जा रहा है। भूमिकामें लेखक तथा निवेदनमें प्रकाशक मोटे मोटे अक्षरोंमें यही आशा प्रगट करते हैं कि इस पुस्तकसे समाजका सुधार अवश्य होगा। समाजके युवक तथा युवती इस पुस्तकके नायक और नायिकाके चरित्रसे शिक्षा ग्रहण करेंगे। विविध नाटक कम्पनियां तरह तरहके सामाजिक और गार्हस्थ्य नाटक इसलिये खेलनेका ब्याज दिखलाती हैं कि इसका समाजपर छाप पड़ेगा और समाजमें सुधार होगा। पर इसका परिणाम सदा उलटा होता है। इन पुस्तकोंको पढ़कर सिवा मन फिरनेके और कुछ नहीं होता। जो लोग नाटकसे लौटकर आते हैं उनसे बातें कीजिये।

देखिये वे आपसे क्या कहते हैं। उनकी बातोंसे ही आप थहा लेंगे कि उनके हृदयपर किस तरहकी छाप पड़ी है। इस नाटकके किस अंशने उन्हें अभिभूत किया है। क्या एक भी ऐसा दर्शक जाता है जो परिणामपर विचार करता है। नायक नायिकाके प्रेमकी चर्चा आप सुन सकते हैं और कुछ नहीं। इसी प्रसंगमें हम एक बात और कह देना चाहते हैं। सड़कपर अथवा मैदानोंमें खड़े होकर जो दवाइयां बेचते हैं वे भी समाजके पतनके लिये जिम्मेदार हैं। उनकी लच्छेदार बातें नवयुवकोंपर ऐसा जादू डालती हैं कि वे केवल दवाकी परीक्षा करनेके लिये कुत्सित मार्गमें पड़ जाते हैं। इन सब बातोंको देखते हुए जितना शोर गुल मचाया जाय थोड़ा है। मनुष्यको प्रलोभनमें फँसानेके इतने अधिक मार्ग हैं, उन्हें घसीटकर गढ़ेमें गिरानेके इतने षड्यन्त्र रचे जारहे हैं कि जितनी भी कड़ी चेतावनी उन्हें दी जाय कम ही है। जहां इस तरहके प्रलोभन वर्तमान हैं वहां अगर किसी तरह हमारी रक्षा हो सकती है तो वह केवल शुद्ध विचार, शुद्ध आचरण, शुद्ध रहन-सहन और क्रियासे संभव है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं है जिसका अवलम्बन कर हम अपनी रक्षा कर सकें। इसी पथपर चलकर हम अपने सदाचारकी रक्षा कर सकते हैं। अगर हम इन्द्रियोंके क्षणिक सुखके लिये पापाचारमें प्रवृत्त होते हैं तो हमारा पतन और नाश अनिवार्य है। इस पथका अवलम्बन करें तो हम उसी दासका अनुकरण करते हैं जो मीठे पोलावके प्रलोभनमें पड़कर अपना जन्म-

सिद्ध अधिकार अर्थात् स्वतन्त्रता वेच देता है। पापाचारमें प्रवृत्त होनेवाला चरित्रहीन क्या करता है। क्षणिक सुख और आनन्दकी प्राप्तिके लिये अपने जीवनके सर्वस्वका वलिदान कर देता है। क्या इस तरहका सौदा कोई भी विचारवान पुरुष कभी भी कर सकता है?

तेरहवां विचार

कलुषित विचारका परिणाम

इस लेखमें हमने नवयुवकोंके सामने कुछ ऐसी बातें रख-नेका प्रयत्न किया है जिसके अनुसार चलकर वे जीवन संग्राममें —चाहे जीवनकी किसी अवस्थामें उन्हें काम क्यों न करना पड़े—अवश्य सफल होंगे और साथ ही अगर उन्होंने इसकी अवज्ञा कर इसके प्रतिकूल आचरण किया तो उनका नाश भी अवश्यम्भावी है। इस विषयपर कुछ लिखनेके पहले हमने मनो-विज्ञानका पूर्णतया अध्ययन किया है। इसलिये हम उन्हें परि-पक्व विचार कह सकते हैं। ये विचार योंही यदा कदा उठे हुए मनके लहर नहीं हैं। हम या आप या अन्य कोई तीसरा व्यक्ति किसी कामके किये जानेका अनुमान नहीं कर सकते। चाहे कितना भी हमारा विचार प्रौढ़ क्यों न हो चाहे, हम कितना भी क्यों न सोचें यह बात कभी बुद्धिमें नहीं जम सकती कि यह काम अमुक प्रकारसे करना होता है जबतक कि हमने स्वयं उसे नहीं किया हो। इसी तरह जबतक हमने कोई काम नहीं किया है, उसके सुख दुखको नहीं जानते। उसके करनेमें क्या परिश्रम पड़ता है, इस बातको नहीं, समझते, तबतक दूसरेको काम करते

देखकर हम इस बातका भी अनुमान नहीं कर सकते कि दूसरे जो इस काममें लगे हुए हैं, उन्हें कितना परिश्रम करना पड़ता होगा। आप अपने कमरेमें तकियेके सहारे बैठे बैठे सोच विचार रहे हैं। विचारते विचारते आपने अपनी बुद्धिमें एक बात दृढ़ की। इससे क्या परिणाम निकला। आपकी प्रवृत्ति जिस ओर है, आप जिस बातका विचार कर रहे हैं, जिससे आप लव लगाये हैं, उसकी तरफ आप एक कदम और आगे बढ़ गये अर्थात् आपके विचारमें उसकी मात्रा और हल हो गयी। इस तरह आप तत्परताकी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं अर्थात् अपने मनको आप दृढ़ कर रहे हैं कि वह अपने निर्दिष्ट स्थानसे विचलित न हो। बल्कि निशानेबाजके तीरकी भांति अपने ठीक निशानेपर जाकर लगे। अगर आप इस काममें उत्साहपूर्वक लग जाते हैं तो फल और भी अच्छा होगा। मान लीजिये कि आप अपनी मानसिक कल्पनाके अन्तर्गत कोई दूसरी बात न आने देकर केवल इसी बातपर विचार करते हैं कि आपका आचरण शुद्ध किस तरह हो सकता है, आपका चरित्र कलंकरहित कैसे रह सकता है, आप सच्चे सदाचारी किस तरह बन सकते हैं, इससे आपके चरित्रका गठन आपसे आप ही होता जायगा और आप उस अवस्थाको प्राप्त होंगे कि आपको पूर्ण रूपसे सन्तोष होगा। धीरे धीरे आपके हृदयके सारे विकार दूर हो जायंगे और आपके चित्तमें दिव्यज्ञानका निर्मल स्रोत बहने लगेगा। उस स्रोतमें आप देखेंगे कि आपमें कैसे कैसे परिवर्तन हो गये हैं। कुछ दिन

पहले जिसे आप अपनी परम प्रिय वस्तु समझते थे, जिसके विना आप अपना जीवन निःसार समझते थे, जिसे आप इस जीवनके सबसे अमूल्य रत्न समझ रहे थे वह अब आपकी दृष्टिमें कुछ भी महत्व नहीं रखता। जिस कपट सौन्दर्यको देखकर आप विचलित हो जाते थे, अनेक तरहके कलुषित विचार उत्पन्न हो जाते थे, उसका आपपर कोई असर नहीं पड़ता। आप देखेंगे कि आपके विचारमें "मातृवत् परदारेषु" सबसे प्रधान हो उठता है। किसी भी रमणीको देखकर अब आपके चित्तमें कलुषित विचार नहीं उत्पन्न होते वल्कि प्रत्येक रमणीको आप देवियोंकी एक एक मूर्ति समझकर उनकी उपासना करेंगे। आप अपने मनमें कहेंगे :—'धन्य हैं ये देवियां जिन्होंने अर्जुन, भीम, कृष्ण, राम तथा तिलक और गांधीसे पुत्ररत्न उत्पन्न किये।

इसके लिये आपको एक वार कष्ट उठाना पड़ेगा। आरम्भमें संभव है आपको कुछ कठिनाईका सामना करना पड़े क्योंकि अनेक मार्गोंसे होकर वही हुई मनकी प्रवृत्तियोंको आपको बटोरकर एक स्थानकी ओर संचालित करना पड़ेगा। पर जहां आपने एक प्रयास करके—सुख या दुखसे तत्परता, दृढ़ता, संलग्नता और स्पष्टवादिताकी आदत डाल ली, अपना आचरण ठीक कर लिया, शुद्ध विचार, शुद्ध जीवन, शुद्ध आचरणकी आदत डाल ली, फिर आप देखेंगे कि जीवनके किसी भी अवस्थामें आप क्यों न हों आप किसी तरहका वन्धन न अनुभव करेंगे। आपको इस वातकी मानसिक पीड़ाका कभी अवसर

नहीं मिलेगा कि आप अपनी इन्द्रियों अथवा मानसिक दुर्बल-ताके दास हो रहे हैं उस समय आप देखेंगे कि आपकी इन्द्रियां आपके वशमें हैं आपकी शक्तिपर आपका अधिकार है। जिसे जिस तरफ चाहिये भेज दीजिये वह आपकी निर्दिष्ट सूचनाके अनुसार अपना काम करती रहेंगी। पर जबतक आपमें यह आदत नहीं आ जाती, आपका चरित्र शुद्ध और गठित नहीं हो जाता, आप सच्चे सदाचारी नहीं बन जाते, आप देखेंगे कि आपके शरीर रूपी इस मशीनका संचालन ठीक तरहसे नहीं होता। वह आपकी इच्छाके अनुसार नहीं चलता बल्कि दासता-की कठिन यातना भोग रहा है और आश्चर्य इस बातका है कि अपने हाथों अपनेको जकड़ रखा है। पर ऊपर जिन बातोंका हमने दिग्दर्शन कराया है यदि उनके अनुसार आप अपना चरित्र ठीक कर लेते हैं, आपका आचरण शुद्ध हो जाता है, आप सच्चे सदाचारी बन जाते हैं तो निश्चय जानिये कि आप संसारयात्रा-में अंधाधुंध चलते जाइये और आपकी शक्तिमें एक रोड़ेकी भी कमी न पड़ेगी। इस अवस्थामें आप जो इच्छा करेंगे, आपके मनकी जैसी प्रवृत्ति होगी, आप अपनी इन्द्रियोंका संचालन जिस ओर करेंगे आपको चारों ओरसे सफलता ही सफलता देखनेमें आवेगी। जिधर आप जायंगे आप विजयी होकर आवेंगे। आपके कामोंसे सदा शुभ फल निकलते रहेंगे। वही अवस्था है जहां पहुंचकर आपको सच्चा सुख मिल सकता है। उसी अवस्थापर पहुंचकर आपका मन निश्चिन्त हो सकता

है, आपके चित्तको सच्ची शान्ति मिल सकती है और सच्ची शान्ति ही वास्तविक सुखका मूल है। आपकी आत्मा सन्तुष्ट है, आप निश्चिन्त हैं कि आपकी प्रत्येक इन्द्रियां अपना अपना निर्दिष्ट काम मजेमें कर रही हैं। कोई कहीं बहककर जानेकी चेष्टा नहीं कर रही है। बस, इससे अधिक आप क्या चाहते हैं।

कितना भी साधारण बल, बुद्धि अथवा योग्यताका आदमी क्यों न हो अगर उसने हमारे कथनके अनुसार एक बार अपने चरित्रका पूरी तरह संगठन कर लिया है तो फिर उसका मार्ग परिष्कृत है। संसारमें ऐसी कोई शक्ति नहीं जो उसके मार्गमें बाधा डाल सके। वह अपने पथपर निरन्तर चला जायगा। उसे कहीं भी किसी तरहकी अड़चन नहीं प्रतीत होगी। यह संभव है कि उसमें वह योग्यता न हो कि वह पूर्ण चमत्कारिताको प्राप्त हो जाय। उमड़ी हुई नदीकी तरह पूर्ण वेगसे बहकर एक छोरसे दूसरी छोरको पहुंच जाय पर वह मन्द मन्द गतिसे तो आगे अवश्य बढ़ेगा। वह बढ़ेगा आगे अवश्य, चाहे उसकी गति वेगवती या मन्द हो। उसके उत्थानकी ही संभावना है उसके पतनका भय नहीं रह जाता। हमने यह कहीं नहीं कहा है कि हमारी धारणाके अनुसार जो व्यक्ति चलेगा वह संसारमें सबसे बड़ा आदमी हो जायगा। अमरीकन राष्ट्रपति हो जायगा, या इङ्गलैण्डका प्रधान मन्त्री हो जायगा। या फ्रांसका फील्ड मार्शल या रूसका विधाता बन जायगा। पहले तो हम इस तरहकी किसो आशातीत योग्यताका प्रलोभन नहीं देते और

अगर अपने परिश्रमसे उसने इस तरहकी योग्यता प्राप्त भी कर ली तो इस तरहके कितने पद हैं ही जो उसे भी मिल सकेंगें। इस तरहके महान पद तो गिने गिनाये हैं और गिने गिनाये व्यक्तिको ही प्राप्त हैं। अगर इस योग्य होकर भी उसे उस पदपर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त नही हुआ तो यह उसकी अयोग्यताका सूचक नहीं होगा। इससे हमें यह परिणाम नहीं निकाल लेना चाहिये कि वह उस पदपर नहीं बैठ सका क्योंकि उसमें उसपर बैठनेकी योग्यता नहीं है और अगर योग्यता होती तो वह अवश्य बैठा दिया गया होता। हम थोड़ी देरके लिये मान भी लेते हैं कि उसे उस पदवी तक पहुंचनेका सौभाग्य प्राप्त हो जाता है तो उसकी मर्यादामें क्या वृद्धि हुई? क्या उसकी हृदयकी उच्चतामें कुछ बढ़ती हुई? अगर नहीं तो उसे इस बातकी परख भी नहीं कि हम जीवनकी किस अवस्थामें हैं। किसी भी अवस्थामें इस तरहके पदोंको पा जाना केवल अपनी योग्यतापर ही नहीं निर्भर करता। इन पदोंपर बैठानेवाले लोगोंकी सदिच्छा भी बहुत कुछ हाथ इसमें रखती है और उसीपर इस तरहकी बातें निर्भर करती हैं। उन पदोंको न पाकर भी वह संसारके सबसे सफल मनुष्यों-में हो सकता है। संसार उसकी चाहे जितनी उपेक्षा करे उसकी मर्यादामें घटती नहीं हो सकती। जिस तरह संसार उसकी परवा नहीं करता उसी तरह वह भी संसारकी परवा नहीं करता। सांसार उसपर मनचाहा प्रहार करे उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

पर एक बातका सदा स्मरण रखना होगा। जो बातें हमने बतलायी हैं वे किसी तरहकी प्रतियोगिता नहीं देख सकती। उनके मुकाबिलेमें आप किसी दूसरी बातको नहीं अपना सकते। जिस तरह 'लिट्टी गरेड़ीका' साथ नहीं अथवा 'सत्तूका फाकना और सहनाईका बजाना' असम्भव है उसी तरह इसके साथ ही साथ दूसरी तरहकी कल्पना करना असम्भव है। आप अपने मनमें समझते होंगे कि क्या दोनों बातें साध्य नहीं हैं। एकके समय एकका और दूसरेके समय दूसरेका अवलम्बन किया जाय तो क्या कोई क्षति है? काम करनेके समय तो उपरोक्त उपदेशों-के अनुसार चलना चाहिये, उनका पूरी तरहसे पालन करना चाहिये, पर कामकाजके बादका दो घड़ी आमोद-प्रमोदमे बिताना अनुचित न होगा। नहीं यह नहीं हो सकता। मनुष्यकी प्रकृति बड़ी ही लचीली है। एक बार उसने फैलना आरम्भ किया फिर आप उसे बटोर नहीं सकता। आप मनुष्य प्रकृतिका इतिहास देखिये। आपको उसके पन्नोंमें ऐसे उदाहरण मिलेंगे कि इसी तरह निर्दोप आमोद-प्रमोदके फेरमें पड़कर कितने नवयुवकोंका नाश हुआ है। मनकी प्रवृत्ति बुरी बातोंकी ओर अधिक वेगसे चलती है। एकबार भी अगर आपने उसे कुत्सित मार्ग पकड़ा दिया तो फिर वह आपके काबूमें नहीं रह सकती। वह इतना करारा सरपर साधेगी कि आप उसके साथ दौड़ न सकेंगे, आपको वाध्य होकर हार खानी पड़ेगी। इसका असर मनपर इतना प्रबल होता है कि वह उसे तुरत कलुषित बना देती है। चित्तकी

चंचलता फिर बरदास्त नहीं हो सकती। नशा पानीका जोश तो फिर भी ठंढा हो सकता है पर वह भूत अगर एक बार सिरपर सवार हुआ तो आप गये। फिर आप किसी तरह नहीं सम्हल. सकते। यह निश्चय जानिये। कामसे आपको जब कभी अवसर मिलेगा आपका मन उसी ढंगके विचारोंमें भ्रमण करने लगेगा। आप धीरे धीरे इतने दुर्बल पड़ जायंगे कि काम करते समय वे ही गन्दे विचार आ आकार आपपर आक्रमण करेंगे और आपको बाधा पहुचायेंगे। आप काम भी ठीक तरहसे नहीं कर सकेंगे। धीरे धीरे आपका पतन हो जायगा। आपका किया कराया सारा प्रयत्न मिट्टीमें मिल जायगा। वह किसी काम नहीं आयेगा। आप समझते होंगे कि हम आपको चकमा दे रहे हैं। योंही मन गढ़न्त बातें कहकर आपके हृदयमें दहशत या डर पैदा कर रहे हैं। नहीं, कदापि नहीं। आप स्वयं अनुसन्धान करके देखिये। आपको इसके लिये कहीं दूर नहीं जाना पड़ेगा। आपके आसपास सैकड़ों ऐसे उदाहरण दिखाई देंगे। सैकड़ों नवयुवक नित्य इसी दोपकी बदौलत बरबाद होते दिखाई देंगे।

आपकी सफलता—चाहे आप जीवनके किसी भी क्षेत्रमें क्यों न हों—आपकी प्रसन्नता इसी बातपर अवलम्बित है कि आपकी सभी इन्द्रियां सदा एकसी रहकर अपना अपना नियत काम करती रहें। अपने मार्गसे विचलित न हों। अगर एक भी इन्द्रिय विचलित हुई कि आपके काममें बाधा पड़ी और आपकी सुख शान्ति भंग हुई। यह सब आपपर निर्भर है। अगर आप

गन्दे विचारोंसे दूर रहते हैं, उन्हें अपने पास फटकने नहीं देते तो कोई कारण नहीं कि आपकी इन्द्रियाँ किसी प्रकार इधर उधर बहककर जाती हैं। उन्हें अपने वशमें कीजिये और संसारके सुखोंका खजाना आपके लिये खुला है। हमारी समझमे इतना भारी वैभवको हाथमें कर लेनेके लिये यह मूल्य अधिक नहीं है। कोई भी पुरुष ऐसा नही होगा जो एक बार इसकी परीक्षा नहीं करना चाहेगा।

चौदहवां विचार

आत्म-संयम

इस जीवनमें सबसे अधिक लाभ जो कोई मनुष्य प्राप्त कर सकता है वह आत्मसंयम है। मनुष्य जीवनका यह सबसे मूल्यवान रत्न है। इसके मूल्यकी तुलना नहीं की जा सकती। यह संसार कार्यक्षेत्र है। विविध प्रकारकी अभिलाषाओं और तृष्णाओंका आगार है। एक काम हाथमें लिया उसे पूरा किया तो तुरन्त दूसरेके लिये इच्छा प्रबल हो उठती है। इस तरह मनुष्य जबतक जीवित रहेगा सदा एक न एक काम उठाता ही रहेगा और एकमें सफल होकर दूसरेकी ओर बढ़ेगा। इस तरह कोई बड़ा भारी कारोबार खोलकर अपनेको धन्य मानता है, कोई धन कमाकर अपनेको धन्य मानता है, कोई उत्तम उत्तम पुस्तकें लिखकर ही अपनेको धन्य समझता है, कोई अजीब अजीब वैज्ञानिक आविष्कार करके ही अपनेको कृतकृत्य समझता है पर जो उच्च स्थान उस व्यक्तिको प्राप्त है जिसने आत्म-संयममें सफलता प्राप्त की है, उसका मुकाबिला इनमेंसे कोई भी नहीं कर सकता। अगर मनपर अधिकार नहीं हो सका, अगर प्रवृत्तियां चञ्चल ही रह गईं और अपनी इच्छाके अनुसार इधर उधर दौड़ती रहीं तो आचरणमें स्थिरता नहीं आ सकती

और जबतक आचरणमें स्थिरता नहीं है तबतक सब व्यर्थ है। सारी सफलता बालूकी भीत है जिसका कोई महत्व नहीं है जरासा ठेस लगनेसे ही किसी दिन गिर सकती है। पर जिसने आत्मसंयम किया है उसने मनको अपने काबूमें कर लिया है, अपनी इच्छाके अनुसार संचालन कर सकता है जिधर चाहता हैं ले जाता है। अर्थात् यहीं उसके वास्तविक चरित्रका प्रदर्शन होता है।

आत्मसंयमसे जो बल मिलता है उसका मुकाबिला भी संसारमे नही किया जा सकता। जबतक हमारी इच्छा नहीं हैं, हम हृदयसे नही चाहते, जोर या जबरन हमसे कोई काम नहीं करा सकता। आप हमारे मालिक हैं, हम आपका नमक खाते हैं, आप हमसे कह सकते हैं "तुमको यह काम करना ही होगा।" पर क्या आप समझते हैं कि इससे हम उस कामको पूरा कर सकते हैं? कभी नहीं। अगर आपको इस बातका विश्वास है तो आप भ्रममें हैं। हम उसको तभी पूरा कर सकते हैं जब हमारा हृदय भी आपके "करना ही होगा" के साथ बोल उठता है, "हां, तुम्हें यह काम करना ही होगा" और तभी वह काम हो सकता है। इस दृढ़ता और चरित्र बलपर लोग कलंक लगाते हैं, कटाक्ष करते हैं। कहते हैं कि अमुक व्यक्तिको अभिमान हो गया है। गुमानमें वह फूला नहीं समाता, अपनी शान दिखलाता है। अहंकारसे कहता है, हां, हां हम इसे दिखावेगे। नहीं, इसे अहंकार कहना भूल है। यह अहंकार

नहीं है बल्कि आत्मापर अपनी विजयको व्यक्त करना है। वह लोगोंसे मानों कहता फिरता है कि आत्मापर विजय प्राप्त करनेका यही फल है। अगर तुम भी इस अवस्थाको प्राप्त होना चाहते हो तो यही करो जो हमने किया है। इतने अभिमान तो आत्मविजयका दुरुपयोग है। भला जिसने इतने परिश्रमसे यह बड़ा लाभ हासिल किया है वह जरासी असावधानी करके उसका दुरुपयोग करेगा? वह अपनी सफलताको दिखाकर तुम्हें उस मार्गपर चलानेका यत्न करता है। यह तो एक प्रकारकी सेवा हुई। यह विजय मनुष्यको सदा नम्र बना देती है और इस बातको मनुष्यको सदा स्मरण करते रहना चाहिये। प्रार्थना करते समय उसे ईश्वरसे प्रार्थना करते रहना चाहिये कि दयामय! आप हमें सदा वह शक्ति प्रदान करते रहें जिससे हम दृढ़तापूर्वक कह सकें; मुझमें सामर्थ्य है, मैं इतना साहस रखता हू कि मैं इस कामको सफलतापूर्वक कर सकूं। संसारमें कोई प्राणी ऐसा नहीं है जो यह स्पर्धा न रखता हो, पर बहुत कम ऐसे पाये जायंगे जो सच्चे हृदयसे इस ओर अग्रसर होते हैं और कुछ कर दिखाते हैं।

इसका प्रधान कारण क्या है? आरम्भसे ही हमलोग आत्म-संयमको गौण समझते हैं, चरित्रगठनकी धुन हममें नहीं रहती। बाल्यकालसे यदी हम निरूपण करके देखें तो हमें विदित होगा कि इस तरफ हमारे पिता माताओंका ध्यान बहुत कम जाता है। चित्तकी प्रवृत्ति ही हमारे चरित्रगठनमें प्रधान भाग लेती

है। एक वार जिस तरहकी आदत पड़ गयी फिर छूटती नहीं। वडे होनेपर अगर होश सम्हाला और सुधारनेकी चेष्टा की तो वह उपयुक्त समय नहीं रह जाता। वड़े पौधेको मन चाहे जिस ओर मोड़ना सहज नहीं है। इसके लिये हमें अन्त समयतक पछताना पड़ता है। पग पगपर हम इस कमीका फल भोगते हैं। पर आत्मा सदा इसके लिये तत्पर रहती है। आत्माकी इच्छा सदा आत्मसंयमके पक्षमें है।

मनुष्य जीवनमें वयःसन्धिका समय सवसे कठिन है। वयःसन्धि १६ और वीस वर्षके वीचके समयको कहते हैं। इस समय मनुष्य जीवनकी एक अवस्थाका त्यागकर दूसरीमें प्रवेश करता है। वालपनकी ललित लीलाओंका साथ छोड़कर उसे जीवन संघर्षके लिये तैयार होना पड़ता है। इसी युगमें उसका चरित्रगठन होता है। इस समय जिस तरहका चरित्र वनाया जायगा वह जीवन पर्यन्त स्थिर और अविचलित रहेगा। इसलिये इस युगमें और सव वातें गौण हो जाती हैं। वस, एक प्रधान वात चरित्रगठन रहती है। इस युगको चरित्रगठनका ही युग कहना चाहिये। इस समय इसपर जैसा प्रभाव डाला जायगा वैसा ही हो जायगा। अगर इस तरफ असावधानी दिखलायी गयी तो इसकी दशा ठीक जंगलकी झाड़ियोंकी तरह होगी अर्थात् असंयमित अवस्थामें यह सदा रहेगी, न तो ठिकानेसे उगेगा, न फूलेगा और न अपनी सार्थकता किसीके

 प्रमाणित कर सकेगा। पर यदि उसे ठिकानेसे काट

छांटकर इसी समय दुरुस्त कर दिया गया तो वागके फूलकी तरह उसकी डालियां सुडौल निकलेंगी और वह अपनी सुरभिसे सबको मस्त कर देगा। इसके लिये दो ही उपाय हैं । एक तो हृदयसे ईश्वरसे प्रार्थना और दूसरा मनकी शिक्षा।

इसके लिये सबसे अच्छी बात यह है कि मनुष्य अपने उन आचरणोंकी आलोचना करे जहां उसने दृढ़ता दिखलायी और आत्मसंयमसे काम लिया है । अगर उन घटनाओंका स्मरणकर उसे,आनन्द होता है, सन्तोष होता है, उसमें उसे कुछ सार्थकता दिखलायी देती है तो उसे उसी तरह सदा आचरण करना चाहिये । क्योंकि ऐसी अवस्थामें इस तरहके आचरणके लिये उसे कभी भी पश्चात्ताप नहीं हो सकता । इससे सभी तरहका लाभ हो सकता है। आत्मबल बढ़ता है, हृदय अधिकाधिक उदार होता जाता है, आशा नित नया रूप धारण करती जाती है। जो लोग इस मार्गपर आना चाहते हैं उनके लिये यही रास्ता है।

पन्द्रहवां विचार

प्रशस्त मार्ग

अपने विधायक हम हैं। हम अपने हाथों अपना नाश या उद्धार कर सकते हैं। दूसरा हमारा कुछ विगाड़ या बनाव नहीं कर सकता। हमें असावधान देखकर हमारा शत्रु भी हमपर आक्रमण कर सकता है और हमें सावधान देखकर मलिन मन कहीं अन्धकारमें छिपा रहेगा। तो हमारा नाश या हमारा उद्धार दोनों हमारे हाथमें है। हम किस ओर जाना चाहते हैं, हमारे जीवनका क्या उद्देश्य है यह हमें निश्चय करना होगा। हम सन्मार्गपर चलकर इस जीवनको अन्तिम समयके लिये सुख-मय बनाना चाहते हैं अथवा यहांपर इन्द्रियोंको सन्तुष्टकर अन्त विगाड़ना चाहते हैं? सबके जीवनमें एक समय आता है जब काम अपना पुष्प धन्वा तानकर मारता है, कुप्रवृत्तियोंको उत्ते-जित करता है, उस समय बुद्धि नष्ट हो जाती है, विचार शक्ति नष्ट हो जाती है और मनुष्य पागल हो जाता है, अन्धा हो जाता है। उसे कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान नहीं रहता। विवेक साथ छोड़कर न जानें कहां रफूचक्कर हो जाता है। इन्द्रियां अपना पराक्रम दिखलानेके लिये प्रबल हो उठती हैं। उस समय अगर

 काम आता है तो आत्मसंयम और चरित्रबल। जिसने

आत्मसंयम प्राप्त कर लिया है, जिसे चरित्रगठनका बल प्राप्त हो गया है वह तो इस संग्राममें ठहर सकता है, शेष उसी समय नष्ट हो जाते हैं। आत्मसंयमी इस तरहके आक्रमणसे घबराता नहीं, वह धीरता और स्थिरतापूर्वक अविचलित अपनी जगहपर खड़ा रहता है और इस तूफानको पहाड़की तरह बर्दास्त करता है। तूफान उठनेके लक्षण देखकरही वह विचार करने लगता है कि अब हमें क्या करना चाहिये, किस मार्गका अनुसरण करना चाहिये। इस तूफानमें अपनेको डाल देना चाहिये और इसीके साथ साथ वह चलना चाहिये अथवा यहीं अटल खड़े रहकर इसकी मारको बरदाश्त करना चाहिये। अवश्य ही आत्मसंयमके सहारे वह खड़ा है और आत्म-संयमका ही उसे सहारा लेना चाहिये। आत्म-संयम उसने किस तरह प्राप्त किया? उसने औरोंकी अवस्था देखी। संसारमें उसके पहलेके लोगोंने जिन जिन मार्गोंका अनुसरण किया था सबकी समीक्षा की और जो मार्ग उसे सबसे उत्तम और प्रशस्त मालूम हुआ उसीका उसने अनुसरण किया। इस समय भी उसे उन्हींका सहारा लेना चाहिये। उसे आंख उठाकर देखना चाहिये कि जो लोग इस तरहकी तूफानमें पड़कर अपनी रक्षा नहीं कर सके हैं उनकी क्या दशा हुई है। इस तरहके तूफानके प्रवाहमें पड़कर जिन लोगोंने विचार नहीं किया और अपनेको समर्पण कर दिया उनकी क्या गति हुई है? उसे उनके उत्थान और पतनके उदाहरणोंको देखना चाहिये कि जिन्होंने इससे

अपनी रक्षा की, इसका सामना किया वह तो विजयी होकर वाहर निकल आये पर जिन्होंने इसके हाथों अपनेको सिपुर्द किया उनकी वड़ी दुर्गति हुई।

अव प्रश्न यह उठता है कि वह उदाहरण क्या है ? वह यह है। हम सदासे देखते आरहे हैं कि जिस मनुष्यने आत्म-संयमसे काम नहीं लिया, अपनी कुप्रवृत्तियोंको नहीं रोका और न रोकनेका यत्न किया उसे शारीरिक यातनायें भोगनी पड़ीं, सामाजिक यन्त्रणाओं और असुविधाओंका शिकार होना पड़ा और आत्माका पतन अपनी आंखों देखना पड़ा और जिस मनुष्यने इसके प्रतिकूल अपनी आत्मापर अधिकार रखा, इन्द्रियोंका दमन किया, उन्हें अविचलित नहीं होने दिया, किसी बुरे रास्तेसे कभी नहीं गया वह सदा विजयी रहा, उसका मार्ग सदा अनवरुद्ध रहा, उसको शारीरिक सुख, सामाजिक आदर और आत्मोन्नति तीनोंका लाभ होता रहा। सृष्टिके आरम्भसे ही यह देखनेमें आ रहा है और सृष्टिके अन्ततक यह ज्योंका त्यों वना रहेगा। इसमें किसी तरहके परिवर्तन या विकारकी संभावना नहीं। यह निश्चय है, निर्दिष्ट है, अनिवार्य है, अकाट्य है और अविवाद है। यह सभी अवस्थाओंमें, सभी देशमें और सभी समाजमें तथा प्रत्येक व्यक्तिमें एक तरहसे घटित होते दिखाई देता है। इसलिये इसकी मर्यादा अधिक है, इसपर लोगोंका एतवार है और भरोसा है, लोग इसे सच मानते हैं। आप इसके विरुद्ध कितना भी प्रवल प्रमाण क्यों न पेश करें वह नहीं ठहर सकता। उसकी असलता

बनावटीपन तथा अप्रमाणिकता तुरन्त प्रगट हो जायगी। अदने-से अदने आदमीके सामने आप उन प्रमाणोंको रख दीजिये वह मुंह बनाकर आपसे कहेगा, महाशयजी, क्षमा कीजिये, यह आपके ही लिये उत्तम होगा, इसपर विश्वासकर आपही आचरण कीजिये। हमलोगोंको इसके माया-जालमें मत फंसाइये। हम तो एकही बात जानते हैं और उसीको सच तथा उचित समझते हैं। हम तो उसीको अपनावेंगे और उसीके सहारे चलेंगे, क्योंकि वह प्रशस्त है। हजारों वर्षका आजमाया है।

फिर भी ऐसे नवयुवकों और नवयुवतियोंका अभाव नहीं है जो समयपर जवानीके उमंगमें इस हजारों वर्षको आजमाई विजय वटिकाको भूल जायंगे और क्षणिक सुख तथा आनन्दके मोहमें पड़कर इसका साथ छोड़ देंगे। इसका परिणाम क्या होगा, इसे समझनेमें देर नहीं लगनी चाहिये। फिर भी उस समय वे इतने मदान्ध हो जाते हैं कि लाखों और करोड़ोंकी आहें—जो इसी आफतमें फंस गये थे और उन्हींकी भांति क्षणिक आनन्दकी तरंगोंमें प्रवाहित होकर इस मूल मन्त्रको भूल गये थे—नहीं सुनाई देती। वे नहीं देखते कि इनको इस तरहकी विषम यन्त्रणा केवल इसलिये भोगनी पड़ रही थी कि इन्होंने मेरी ही तरह कान नहीं दिया और मनमानी किया। आज हम भी इन्हींकी तरह मनमानी करने जा रहे थी और उसी तरह गिरेंगे जिस तरह इन्हें गिरना पड़ा था।

इस अवनीतलपर तो हमारी समझमें इससे ज्वलन्त कोई

प्रमाण नहीं है। अगर यह उदाहरण हमें पैर पीछे खींचनेके लिये प्रेरित नहीं करता तो हम यही कहेंगे कि इस जीवनमें हमारा निस्तार नहीं है। फिर भी हम नवयुवकोंको इस तरह भेड़की भांति गिरते देखते हैं तो विस्मयसे क्षुब्ध हो जाते हैं। क्या इसे हम जंगलीपन, अनवस्थिति और पागलपन नहीं कह सकते। जो मनुष्य हजारों और लाखों वर्षके अनुभवोंपर पानी फेरकर उसके प्रतिकूल चलकर भी अपनी रक्षा करना चाहता है, अपना उद्धार चाहता है, उसकी तुलना ठीक उस मनुष्यसे की जा सकती है जो नायगराके झरनेसे होकर पहाड़पर चढ़ना चाहता है। नायगराका प्रपात संसारमें सबसे प्रबल है। उसके पानीका वेग इतना तीव्र आता है कि जो कुछ उसके नीचे पड़ जाता है उसका पता नहीं लग सकता। इसी तरह जो इसके प्रतिकूल चलनेका साहस करेगा उसका भी पता नही लग सकता।

अब हम उन नवयुवकों और नवयुवतियोंसे एक प्रश्न पूछना चाहते हैं जो इस अकाट्य और पूरी तरहसे आजमाये प्रमाणके विरुद्ध जाना चाहते हैं। तुम लोग किस प्रमाणपर इसके विरुद्ध आचरण करना चाहते हो? तुम लोगोंकी धारणाका आधार क्या है यह हम जान लेना चाहते हैं। क्या तुम लोग समझते हो कि इन हजारों और लाखोंसे तुम्हारी बुद्धि तीव्र है और तुम उनसे ज्यादा बुद्धिमान हो! क्या लाखों आदमी मूर्ख थे और तुम अकेले चतुर या बुद्धिमान हो? नहीं ऐसा मत सोचो। यह धारणाही गलत आधारपर है। तुमने आरंभमें ही गलत

धारणा कर ली है। यह अकाट्य समझो कि दस-पंच जो राय कायम कर लेंगे उसके मुकाबिले किसी एक व्यक्तिकी राय प्रौढ़ और अनुकरण करनेके योग्य नहीं हो सकती। उसका आदर नही हो सकता और जो बरजोरी उसीके अनुसार चलना चाहेगा उसे विपत्ति और संकट भोगने पड़ेंगे।

हम आपसे फिर फिर कह देना चाहते हैं कि आपका यह दुस्साहस है। इसके फेरमें पड़कर आप आपदाओं और कठिनाइयोंमें पड़ जायँगे। इस (अपने मनसे निर्धारित) मार्गका अवलम्बन कर आप उतनीही भूल कर रहे हैं जितनी वह मनुष्य कर सकता है जो नायगराके प्रपातको सीढ़ी समझकर उसपरसे होकर चढ़ना चाहता है। आप जानते हैं उसकी क्या गति होगी? ऊपर चढ़ना तो दूर रहा, धक्का खाकर वह उसी अथाह जलराशिमें विलीन हो जायगा। अर्थात् जिस स्थलपर वह निश्चित खड़ा था उससे भी वह हाथ धो बैठेगा। यही हालत आपकी होगी। इस मार्गको प्रशस्त समझकर आप अंगीकार करेंगे और नीचे गिरेंगे।

हमलोग तुमसे पहले इस संसारमें आये। तुमसे अधिक इसका अनुभव प्राप्त किया। इसकी गतिको देखा। इसे हमलोगोंने तुमसे अधिक समझा भी। हमलोग अच्छी तरह समझते हैं कि इस बुराईमें फंसनेका फल कितना कड़ुआ है कि बरदाश्त नहीं होता। तथा इससे बचे रहनेवाला क्या ही सुख और आनन्दसे जीवन बिताता है। इसी लिये हमलोग एक बार

पुनः गला फाड़कर चिल्लाते हैं और तुमसे कहते हैं कि जो मोहनी मूर्त्ति तुम्हें प्रलोभन देकर अपनी ओर बुला रही है वह शैतानकी मूर्त्ति है। उससे बचे रहो और अपनी रक्षा करो। उसके फेरमें पड़कर तुम अपना सर्वनाश कर बैठोगे।

सोलहवां विचार

हृदयकी निर्मलता

किसी भी धर्मपुस्तकको उठाकर पढ़िये आप देखियेगा कि गौण बातोंमें मतभेद होते हुए भी प्रधान बातमे सबका लक्ष्य एक ही ओर है और सभी उसमें सहमत हैं। सभी ग्रन्थोंमें इस बातपर विशेष जोर दिया गया है कि सबसे पहले अपना हृदय ईश्वरको सौंप दो। अपने हृदयमें उसको स्थान दो। अपना तन, मन सब उसीको सौंप दो, अपना कुछ भी न समझो। जिस मार्गपर वह अपनी प्रेरणासे ले जाता है वही मार्ग प्रशस्त समझो और उसीके अनुसार चलो। वह लीलामय है और तुम्हें अपनी विविध लीलाओंका आधार बनाकर वह अपनी लीला पूर्ण करना चाहता है। इसलिये तुम्हें भी यही उचित है कि तुम अपनेको उसके हाथों सौंप दो। इसका क्या अभिप्राय है? केवल दो तात्पर्यसे धर्मग्रन्थोंने इस बातपर इस तरहका जोर दिया है। पहले तो हम संकल्प विकल्प तभीतक करते रहते हैं जबतक हृदयपर हमारा अधिकार रहता है। हृदय जबतक हमारा है, उसे हमने किसीके हाथ सौंप नहीं दिया है, किसीको उसपर जबतक अधिकार नहीं है तबतक वह हमारा है। हम उसका जिस तरह चाहें

प्रयोग कर सकते हैं। कल्पनाओंका उद्गम हृदयसे ही होता है। जो कुछ हम करते हैं, पहले वह विचार रूपसे हमारे मनमें उठता है। मन उसे हृदयके पास ले जाता है। हृदय उसे तौलकर देखता है कि वह उसे ग्रहण कर सकता है कि नहीं। अगर वह विचार हृदयमें बैठ गया तो उसे चरितार्थ करनेके लिये वह हमारी कर्मेन्द्रियोंको प्रेरित करता है और कर्मेन्द्रियां उसे चरितार्थ करनेमें प्रवृत्त होती हैं। जबतक हमारा हृदय हमारे वशमें है हम उसका मनचाहा प्रयोग कर सकते हैं, वह भलेकी तरफ भी जासकता है, बुरेकी तरफ भी जासकता है, पाप भी कर सकता है, पुण्य भी कर सकता है। चूंकि उसपर हमारा एकाधिपत्य है इसलिये उसके आचरणके हम जिम्मेदार और भागी हैं। पर जब उस परसे हमारा अधिकार उठ गया और दूसरेका आधिपत्य स्थापित हो गया तो उससे जो कुछ कार्या-कार्य होगा उसका जिम्मेदार वही समझा जावेगा। इसी लिये धर्म ग्रन्थोंकी प्रेरणा है कि हृदयकी जिम्मेदारी अपने सिरसे टालकर निश्चिन्त हो जावो। दूसरे ईश्वर सबका स्वामी है, परम पवित्र है। इसलिये उसका निवास जहां होगा वह स्थान या तो पहलेसे ही परम पवित्र रहेगा या उसके संसर्गसे परम पवित्र हो जायगा। इस तरह ईश्वरके संसर्गसे पवित्र होनेपर फिर उसे किसी बातकी चिन्ता नहीं रह जायगी। इसलिये अगर हम हृदयसे अपना आचरण शुद्ध रखना चाहते हैं, अपवित्र और दूषित कर्मों से अपनेको कलंकित और अपवित्र नहीं करना

चाहते तो हमारा कर्तव्य है कि हम अपना सर्वस्व उसी परम पिताके चरणोंमें निछावर कर दें कि दयामय! ले, इसकी सम्हाल तू ही कर।

इस प्रसंगमें एक कथा है। एक युवक बड़ी विपत्तिमें पड़ गया था। उसका मन सदा चञ्चल रहा करता था। उसके हृदयमें सदा कलुषित विचार उठा करते थे। जो काम वह करने लगता उसीमें उसे बाधा पड़ती। वे विचार उसके मनको अपनी ओर खींच लेते और विविध तरहसे उसे तंग करते। बिचारा धर्मभीरु था। डर गया कि इन पापी विचारोंके कारण कहीं रौरव नरककी हवा न खानी पड़े क्योंकि नीतिका वचन है कि मनसा, वाचा और कर्मणा तीनों प्रकारसे असद् विचारका पोषना पाप है। वह एक पेड़के नीचे बैठा इसी चिन्तामें पड़ा था। उसी समय उधरसे एक वृद्ध तपस्वी आ निकला। नवयुवकने झुक कर प्रमाण किया और अपने हृदयकी अवस्था कह सुनायी। तपस्वीने बड़ा ही सन्तोषजनक उत्तर दिया। बोले पुत्र! चिन्ता छोड़ दो। अगर चिड़िया तुम्हारे सिरपरसे होकर उड़ जाती है तो उसमें तुम्हारी जिम्मेदारी किस बातकी है क्योंकि उसके पर हैं और वह उड़कर जहां चाहे जासकती है पर हां, अगर तुम्हारी असावधानीसे वह तुम्हारे ज़ुल्फ (चुटिया, शिखा) में घोंसला (खोंता) लगा ले और तुम उसका निवारण न करो तो तुम हर तरहसे जिम्मेदार समझे जावोगे।"

हमारी समझसे सन्यासीकी बातें सारगर्भित और युक्ति-

पूर्ण हैं। विचारोंको पैर होते हैं, उनका सब जगह प्रवेश है। उनके मार्गमें कोई बाधा नहीं डाल सकता। वे जहां चाहें आ जा सकते हैं। इसके लिये हम जिम्मेदार नहीं होसकते कि हमारी प्रेरणाके बिना वे आते हैं और हमपर आक्रमण करते हैं। पर अगर हमने उन्हें अपने हृदयमें स्थान दिया, उनकी तरफदारी की, उनपर विचार करना आरम्भ किया तो हम उसके जिम्मेदार अवश्य हैं। इससे दूसरा परिणाम यह निकला कि प्रत्येक आदमी चरित्रभ्रष्टता और विलासिताको पाप समझते हैं अगर किसीके मुंहसे गन्दी बात निकल आती है तो उसे केवल हीनता समझते हैं पर पापपूर्ण विचार जिस समय हमपर आक्रमण करते हैं हम उनकी सहायता नहीं करते, उनसे किसी भी तरह नहीं दबते, बल्कि दृढ़ता और साहसके साथ उनका मुकाबिला करनेके लिये तैयार रहते हैं तो उसके किसी तरहकी हानिकी संभावना नहीं रहती और जबतक हम उनका पक्ष न करें, उन्हें समुचित और अच्छा नही बतलावें हमारी कोई निन्दा भी नहीं कर सकता। उनके लिये हमें कोई भी बुरा नही कह सकता।

इससे हम एक और परिणामपर पहुंचते हैं। तपस्वीने ऊपर जो कुछ उत्तर दिया है उससे प्रगट है कि जीवनकी किसी न किसी अवस्थामें एक बार कलुषित विचार प्रत्येक मनुष्यपर अपनी छाप लगानेका यत्न करते हैं। उस युवाको पता नहीं लगेगा कि इस तरहकी अनहोनी बात होनेवाली है पर एका-एक वह देखेगा कि शत्रु दरवाजेपर खड़ा खटखटा रहा है और

ललकार रहा है। यह अस्वाभाविक नहीं है। उमरकी तासीर ऐसी ही है कि स्वाभाविक तथा इस तरहके विचार एक वार हृदयमें अवश्य उत्पन्न होंगे पर अगर हमलोग उन्हें अपनावें नहीं, उनकी याथातथ्यपर विचार तक न करें तो वे हमारे पास टिक नहीं सकते। वे तुरत रफूचक्कर हो जायंगे क्योंकि हमारी उपेक्षाका फल यह होगा कि वे देख लेंगे कि यहां हमारी दाल नहीं गल सकती। यहां हमारा आदर नहीं होगा। यह हाड-मांस दूसरी मिट्टीका बना है। इसके लिये हममे वल होना चाहिये। हृदयमें दृढ़ता होनी चाहिये, इन्द्रियोंपर अधिकार होना चाहिये। यह सब हमें कहांसे मिल सकता है। वस, सबका दातार एकमात्र परमपिता परमेश्वर है, उसकी कृपा और अनुग्रहसे हमें वल और साहस मिल सकता है कि हम हरतरहके प्रलोभनोंको अपनेसे दूर रख सकें,उनके फेरमें न पड़ सकें, उनके शिकार न वन सकें। उसकी कृपाके बलसे दुर्बलोंमें कामकी प्रेरणा भी वलके अनुसार दुर्वल होगी। जवतक उसकी कृपा नहीं है यह नहीं हो सकता।

हम ऊपर कह आये हैं कि हृदय ही इस पार्थिव शरीरका कर्ता धर्ता है। मन तो केवल विचारोंको उत्पन्न कर हृदयके पास पहुचा देता है। हृदय उसकी परीक्षा करता है और उसके सम्बन्धमें निर्णय करता है। इसलिये सब काम होता है हृदयकी प्रेरणाके अनुसार। उसे ही हमें अपने भाग्यका विधायक समझना चाहिये। इसलिये अगर हमारा हृदय पवित्र है जैसा कि धर्म-

ग्रन्थोंमें लिखा है कि ईश्वरसे मिलना हमारे लिये कोई कठिन बात नहीं। जिस दिन हमारा हृदय सर्वतोरूपसे स्वच्छ हो जायगा उस दिन परमेश्वर साक्षात् प्रगट होकर हमें इसी शरी-रमें दर्शन देंगे, स्वर्गमें उनके दर्शनकी कामना हम क्यों करें। उतनी प्रतीक्षाकी आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। और अगर हमें एक बार भी परमपिताकी झांकी मिल गई तो क्या पाप वास-नायें अथवा बुराईकी तरफ ले जानेवाली शक्तियां कभी भी हमारे पास फटनेकी धृष्टता करेंगी। फिर किसी नीच वृत्तिको हमारे पास आने तकका साहस नहीं होगा। उसे भय लगेगा कि इसके हृदयमें वह अपूर्व तेज विद्यमान है जिसके स्पर्शसे ही मनुष्य जलकर भस्म हो सकता है।

मनुष्यके हृदयमें कलुषित विचार कहांसे उत्पन्न होते हैं। निःसङ्कोच कहना पड़ेगा कि स्त्रियोंके संसर्गसे अथवा उन्हें देख कर। स्त्रियां दो तरहकी हो सकती हैं। एक तो वह जो परम पवित्र और सती साध्वी हैं। छल कपटसे सर्वथा दूर रहती हैं और निर्दोष हैं। दूसरी कुलटा या पतित हैं। जिनका चरित्र शुद्ध नहीं है, आचार खराब, विचार मलिन है, काम हेय और निन्दनीय है। छल और कपटाचार ही इनका काम है। एक नवयुवक--जिसने अपनी आयु पवित्र विचारोंमें बिताई है, पापका नाम नहीं लिया है, अकरणीय कर्म नहीं किया है—वह किस प्रकार ऐसी कुलटा स्त्रीका सहवास पसन्द करेगा? क्या आत्मा एक ही दिनमें ऐसी गिर जायगी कि वह अपनी

अवस्थाको भूल जायगा। क्या उसे इस बातका जरा भी ख्याल नहीं रहेगा कि यह औरत गिरी हुई है, हमारी इसकी कोई समता नहीं है। हमें इसके साथ उठना बैठना, और संसर्ग रखना तो दूर रहा, इसकी हवासे भी दूर रखना चाहिये। इस तरह कोई भी नवयुवक अपनी रक्षा बड़ी आसानीसे कर सकता है। अब मान लीजिये कि कोई सती साध्वी निर्दोष बालिकासे उसका सम्बन्ध हो जाता है। युवती निर्दोष है संसारके छल कपट और जालको नहीं समझती। युवकके प्रेममें बावली है, उसके प्रेमके सामने वह सब कुछ तुच्छ समझती है और उसके प्रेमके फेरमें पड़कर ही अपना सतीत्व नष्ट कर देनेके लिये तुल जाती है। उस समय उस नवयुवकका क्या कर्त्तव्य है। क्या उसे उस अवसरका दुरुपयोगकर अपनी कामेच्छाको तृप्त करना उचित है? क्या उसे क्षणिक इन्द्रिय-जनित सुखकी उपलब्धि करना उचित है। नहीं, कदापि नहीं,। अगर उस नवयुवकमें विवेककी मात्रा जरा भी वर्तमान है तो वह तुरत सोचेगा "यह युवती कुछ समझती बूझती नहीं। इस समय इसके सिरपर प्रेमका भूत सवार है। इसलिये पाप और पुण्यका विचार इसके पाससे दूर हो गया है। जिस समय इसे होश आवेगा यह अपने किये पर पछतायगी। इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है। यह इस तरहके नीच कामके लिये क्यों उतारू हो गयी है? मेरे प्रेममें फंसकर मुझे सन्तुष्ट करनेके लिये। इसलिये मेरा भी यही कर्त्तव्य है कि सच्चे प्रेमीकी

भांति इसकी रक्षा करूं। इसकी आत्माको गिरनेसे बचाऊं। इसके हृदयमें शैतानका निवास न होने दूं। यही आत्माकी सच्ची वीरता है, यही शुद्ध आत्मबल है। वह मुझपर विश्वास करती है उसकी धारणा है कि मैं सदा उसकी भलाई किया करूंगा, सदा उसकी उन्नति और सुखका साधक हूंगा। यही समझकर वह हमारे ऊपर सर्वस्व निछावर कर देती है। इस बातको हमें क्षण भरके लिये भी नहीं भूल जाना चाहिये। इस अवस्थामें क्या हमें कभी भी उचित है कि हम उसकी भूलका लाभ उठाकर अपने इन्द्रियको सुख दें और फिर दोनों जन्मजन्मान्तरमें परितापकी आगमें जला करें। हमारी समझमें इससे बुरा सौदा दूसरा नहीं हो सकता। सन्त अण्टोनी एक बडा भारी महात्मा हो गया है। वह सदाचरणकी सजीव मूर्त्ति था। एक समय तृष्णाने उसका पीछा किया और वह भाग चला। कहा जाता है कि जब कभी उसके हृदयमें कलुषित विचार उत्पन्न हो जाते था वह पानीमें कूद पड़ता था और घण्टों डुबकी लगाया करता था। इस तरहसे जब उसका चित्त पूर्णरूपसे शान्त हो जाता था तब वह पानीसे बाहर आता था। हमारे यहां भी रम्भा और शुकसम्वाद आत्मविजयका प्रत्यक्ष उदाहरण है। रम्भाकी मोहिनी मूर्त्ति, उसकी तीखी चितवन, उसकी भावभङ्गी, उसका भ्रू विलास उसका नवपल्लवाधर, उसका विलसित यौवन, उसकी रसभरी बातें महर्षि शुकदेवपर किसी तरहका असर नहीं कर सकीं।

क्योंकि शुकदेवजीने समझ लिया था कि यह क्षणिक विलास जन्मजन्मान्तरमें हमें सतावेगा। इससे इसी समयसे सचेत रहकर इसे दूर रखना चाहिये और अपने पास इसे फटकने नहीं देना चाहिये।

हमें अपने अभिभावकोंसे भी दो शब्द कहना है। मनुष्यको पापाचरणसे बचानेके लिये सहधर्मिणी सबसे बड़ी सहायक है। वह अपने पतिकी सदा देख भाल करती रहेगी। उसके मनो-विनोदका साधन इकट्ठा करती रहेगी। मनुष्य अपने हृदयके गुप्त भेदको यदि कहीं प्रगट कर सकता है तो वह उसी सह-धर्मिणीके पास। उसके मनके भावोको समझकर वह उसीके अनुरूप साधन संग्रह करती रहेगी। इसलिये समयपर शादी विवाह करके ही आप अपने कर्त्तव्यकी समाप्ति मत समझिये। पहले तो सदा आपको उचित है कि शादी व्याहके सम्बन्धमें अपनी सन्ततिकी इच्छापर अवश्य विचार कीजिये। उनके मनके मुआफिक ही शादी करनेका यत्न कीजिये। दूसरे अगर आप देखते हैं कि किसी कारणसे आपकी सन्ततिमें इन्द्रिय-जनित विकार उत्पन्न हो रहा है तो आप उसकी पत्नीको एक क्षणके लिये भी उसके पाससे मत हटाइये। स्त्रीके साथ उसे रखकर आप निश्चिन्त हो जाइये। हम आपको पक्का विश्वास दिलाते हैं कि वह स्त्री-अगर उसमें थोड़ी भी योग्यता होगी, अगर योग्यता न भी न हुई तो इसमें आपकाही दोष हैं क्योंकि आपनेही कन्या तलाश की है और पसन्द की है—

अपने पतिकी हर तरहसे रक्षा कर लेगी, उसे बचा लेगी। कितनी ही अवस्थाओंमें पति पत्नीके इस संयोगमें बिलम्ब होनेके कारण अथवा पति पत्नीमें मेल न होनेके कारण पति कुमार्गगामी हो गये हैं। कई जगह ऐसा देखा गया है कि पत्नीकी ज्यादा दिनकी अनुपस्थितिके कारण पति कुमार्गगाम हो गया है और जब एकका रङ्ग उसके ऊपर चढ़ गया तो उसे उतारकर दूसरा रङ्ग चढ़ाना कठिन हो गया है। इसलिये अगर आप अपनी सन्ततिके सच्चे हितैषी हैं अगर आप हृदयसे उनके कल्याणकी कामना करते हैं तो आपको उचित है कि इस बातपर विशेषरूपसे ध्यान दें, इसे अपना सबसे बड़ा और प्रधान कर्त्तव्य समझें और सहजमें ही इससे मुक्त हो जानेका यत्न कभी नहीं करें।

ऐसे भी लोग होते हैं कि जिनकी प्रवृत्ति स्त्रीकी ओर नहीं होती। या तो वे आरम्भसे ही ब्रह्मचर्य्य जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, या एक पत्नीके मर जानेपर फिर दूसरी बार शादी नहीं करना चाहते। कोई कोई ऐसे भी लोग होते हैं जो कि आर्थिक कठिनाईके कारण विवश होकर अविवाहित रहते हैं। उनके लिये हम कुछ बातें लिख देते है और उन्हें उन बातों-का सदा स्मरण रखना चाहिये या उन्हींपर चलना चाहिये:--

(१) जहां कुमार्गकी बातें होती हों वहांसे दूर रहो। ऐसे आद-मियोंसे संसर्ग मत रखो जो कुमार्गगामी हों। इस तरहकी बातें हंसी मजाकमें भी मुंहपर न लाओ जिन्हें तुम कलुषित समझते

हो। (२) नशीली वस्तुओंसे सदा परहेज रखो। यहांतक कि चाय और कहवा भी न पीयो। (३) मिर्चा मसाला तथा अन्य उत्तेजक पदार्थ, जिसे तामसिक भोजन कहते हैं, मत खावो। (४) जिन खेल तमाशोंमें गन्दगी हो, या जिन पुस्तकोंमें ऐसी वातोंका समावेश हो, उन्हें देखने न जावो और न पढ़ो। (५) दिनमें कई वार स्नान करो। जिस समय चित्तकी प्रवृत्ति चञ्चल हो उठे उस समय तुरन्त स्नान करो और सिरको वार वार धोवो। (६) सदा सत्सङ्गमें रहो। धर्माचरण करते रहो। ऐसे लोगोंसे संसर्ग रखो जो तुम्हें सन्मार्गकी ओर ले चलें। तुम्हारे मनको कलुषित न होने दें। (७) सदा ईश्वरका स्मरण करो और उससे प्रार्थना करो कि दयामय! तू मुझे कभी न विसारना। अपनी दयाकी वर्षा सदा करते रहना। तेरी सहायतासे ही मैं इस भवसागरसे पार हो सकूंगा।

जो वातें हमने ऊपर लिखी हैं वह दोनोंके लिये लागू हैं। स्त्रियोंको भी इसी नियमके अनुसार चलना चाहिये।

अगर हम सदा इसी तरहसे प्रयत्न करते रह गये तो हमारी सफलता अनिवार्य है। फिर हमें पतनका भय किसी तरह नहीं रह सकता। मनुष्यको एक बात और ध्यानमें रखना चाहिये। उसे सदा स्मरण रखना चाहिये कि इस मुखका चुम्बन उसकी माने किया है। पूजनीया जननीने जिस मुखका चुम्बन किया और करेगी उस मुखको सदा पवित्र रखना चाहिये। किसी अनधिकारीके हवाले उसे नहीं कर देना चाहिये।

किसी अनधिकारीके चुम्बनसे उसे अपवित्र नहीं बनाना चाहिये। इस पवित्र भूमिमें इस मर्यादाकी रक्षा सदासे होती आयी है। वर्तमान युगके नवयुवको ! अगर अपनी जननी और जन्मभूमिकी लाज तुम्हें रखनी है, अगर तुम इन दोनोंको कलङ्कित करना नहीं चाहते तो तुम भी इस प्रणको निबाहो इस मर्यादाका पालन करो। बोलो, क्या उत्तर देते हो ?

सत्रहवां विचार

पापका फल

संसारके सभी धर्म एक मत होकर कहते हैं:-पापकी सजा मृत्यु है। जो मनुष्य पाप करता है उसे मृत्युका दण्ड मिलता है।

वैज्ञानिकोंने भी यही सिद्ध करके दिखलाया है कि जो मनुष्य समाजकी मर्यादाकी परवा न कर सामाजिक नियमोंकी अवहेलना करता है और उसके प्रतिकूल चलनेका साहस करता है उसे उस पापकी सजा मृत्यु दण्डके रूपमें मिलती है। यह किसी कविकी कपोलकल्पना या कल्पित किस्सा नहीं है। यह केवल मनोरञ्जनके लिये गढ़कर नहीं कहा जा रहा है वल्कि यह सच और अक्षरशः सत्य है। चाहे किसीको पता भले ही न लगता हो, चाहे मृत्युसूचनामें आचार भ्रष्टताके कारण एक भी मृत्यु न लिखी गयी हो पर अनुसन्धान करनेसे मालूम होगा कि इस वीमारीसे जितना हाहाकारी नाश होता है वड़े वड़े युद्ध उतना नहीं कर सकते। और सवसे वड़ी वात तो यह है कि युद्ध आदि केवल शरीरका नाश करते हैं। जो युद्धमें भाग लेता है वह अपने शरीरका वलिदान देता है पर यह तो शरीरके सवसे कोमल अङ्गपर चोट करना

है अर्थात् आत्माको जर्जर बना देता है और उसका नाश कर डालता है। विना बलिष्ठ आत्माके यह शरीर बेमतलब है। इसकी कहीं भी उपयोगिता नहीं है। विना आत्माके यह शरीर मुर्दासे भी बुरा है क्योंकि मर जाना तो इस अवस्थाका अन्त है। पर पशुकी भांति जीवित रहना अनेक तरहकी यातनाओं और पीड़ाका शिकार बना रहना अतिशय दुःखदायी और विषम है।

अभी थोड़े दिनकी बात है कि किसी अंग्रेज डाकृरने दिखलाया है कि गरमी रोगोंका राजा है। फेफड़ेकी भी बीमारियां खराब होती हैं। इन्हें सब लोग प्राणघातक समझते हैं। जिसे फेफड़ेकी कोई बीमारी हुई उसके जीनेकी आशा हमलोग एकबारगी त्याग देते हैं। यह निश्चय कर लेते हैं कि ईश्वरके घरसे इसके लिये पुकार आ गई। अगर वह अच्छा हो गया तो सब लोग उसका धन्य भाग्य समझते हैं। यही हालत नमोनियाकी है। नमोनियाका नाम भी उसी तरहका भय उत्पन्न कर देता है जिस तरह फेफड़ेकी अन्य बीमारियां। हृदयके रोगोंका तो कहना ही क्या है? अभी काम कर रहे हैं और एकाएक हृदयकी गति रुकी और हम इस संसारसे विदा हो गये। कब समन आया और कब हमपर जारी किया गया, कुछ पता नहीं लगता। ये सब भीषण रोग हैं पर इनकी भीषणता गरमीके रोगके सामने मात है। गर्मीसे जितनी मृत्यु होती है उसके सामने ये बीमारियां पृथक् पृथक् मात हैं।

इसपर हरेक व्यक्ति यह प्रश्न पूछ सकता है कि मृत्युसूचना-में तो एक भी मृत्यु इस बीमारीसे नहीं लिखी रहती? पूछने-वालोंकी शङ्का अकारण नहीं है। बहुत ही उपयुक्त प्रश्न उसने किया है। इसका कारण यह है कि गरमीकी बीमारी स्वयं किसीकी मृत्युका कारण नहीं होती। वह शरीरकी सारी शक्तिका नाश कर डालती है और रस चूस लेती है। शरीरको कमजोर और असहाय पाकर अनेक तरहकी अन्य बीमारियां उसपर आक्रमण कर बैठती हैं। उसमें इतनी शक्ति नहीं रह जाती कि उनका सामना करे। परिणाम यह होता है कि किसी न किसी बीमारीका वह शिकार बन जाता है और उसका इस प्रकार अन्त हो जाता है। जब मृत्यु सूचनामें लिखानेका समय आया तो उन गौण बीमारियोंका नाम लिखा दिया गया जिनके तात्कालिक आक्रमणसे उसने जीवन खोया है। परिणाम यह होता है कि उसका अन्त हो जाता है पर संसारकी आंखोंसे यह बात छिपी ही रह जाती है कि वास्तवमें उसकी मृत्यु किस बीमारीके कारण हुई। इस तरह वह संसारकी खुली घृणाका पात्र नहीं बनता और उसकी कहीं निन्दा नहीं होती।

प्रश्न यह उठता है कि कोई व्यक्ति इस बीमारीका शिकार किस तरह बन जाता है। जब हम जानते हैं कि यह बीमारी इतनी भीषण है, इसके आक्रमणका फल अतिभीषण यातना है, शरीरके अंग प्रत्यंग सड़ गल जाते हैं, कट कट कर गिरने लगते हैं, शरीर रक्तहीन हो जाता है। तब भी हम इस बलामें किस तरह

जाकर फंस जाते हैं। इतना जानकर भी हम अपना और अपनी सन्ततिका सर्वनाश करना नहीं चाहेंगे। इसका एकमात्र कारण मूर्खता है। हम जान बूझकर अपने शरीरको सड़ाना गलाना नहीं चाहेंगे, हम क्षति होते नहीं देखना चाहेंगे, उसे फूट फूट कर बहते और मवाद या पीप निकलते नहीं देखेंगे। यह हमें कभी भी अभीष्ट नहीं है कि निकम्मा जहर हमारे रक्तमें प्रवेश कर जाय और हम उसकी यंत्रणा सदा भोगते रहें। हम अपने शरीरके अंग प्रत्यंगको सड़ते गलते नहीं देखेंगे। नयी जवानीमें—जिस समय हमें संसारमें हँसी खुशीकी जिन्दगी बितानेका समय है—हमें उदास और श्रीहीन होकर रहना नहीं चाहिये। अकारण बल और पौरुष गंवाकर हम व्यर्थ जीवन धारण करना नहीं चाहेंगे। जिस समय हमें इस जीवनका सदु-पयोग करना चाहिये, इसकी सहायतासे संसारका कुछ उपकार कर, दूसरोंको लाभ पहुंचना चाहिये उस समय इसके नाम हम दो आंसू नहीं गिराना चाहते। हम अपना यह अमूल्य जीवन बेकार नहीं नष्ट करना चाहते।

जवानीके जोशमें जिसने अन्धोंकी तरह इन्द्रियोंका प्रभुत्व स्वीकार किया था और उनको सुख पहुंचानेके लिये कर्तव्या-कर्तव्यका विचार नहीं किया था उसे इस समय इस प्रकार रोते देख हृदय दहल जाता है। उस समय इसने ख्याल नहीं किया और आज छाती पीटकर रोरहा है। हाय! उस समय मुझे नहीं मालूम था कि इस करनीका यह फल भोगना पड़ेगा नहीं तो मैं

इसके निकट क्यों आता। उनके निराशा भरे चेहरेको देखकर हृदय दया और करुणासे भर आता है। उस समय यही ख्याल आता है कि हमलोग दो तरहसे कितनी भारी भूल करते आ रहे हैं और उसीका फल है कि हम समाजका विनाश कर रहे हैं। पहली भूल तो यह है कि मृत्यु सूचनामें हम साफ साफ नहीं लिख देते कि यह मृत्यु गरमीकी बीमारीसे हुई। उस मरे आदमीको अन्तिम समय कलंक और निन्दासे बचानेकी गरजसे हम अपनी भावी सन्ततिका सर्वनाश कर रहे हैं। अगर मृत्यु सूचनामें सच्चा सच्चा हाल लिख दें और प्रतिवर्ष, मास या सप्ताह इसकी सच्ची सच्ची रिपोर्ट निकल जाया करे तो हजारोंका उपकार हो सकता है। इस करनीसे इस गतिको पहुंचना पड़ता है यह ख्याल उन्हें उस मार्गसे अवश्य रोकेगा। दूसरी भूल डाक्टरों और वैद्योंकी असावधानी और लापरवाही है। वैद्य और डाक्टर लोग जानते हैं कि अमुक बीमारीसे अमुक परिणाम निकलता है और अमुक बीमारीका क्या कारण है। किन किन कारणोंसे यह गरमीकी बीमारी हो जाती है और इसके आक्रमणके बाद मनुष्यकी क्या दुर्दशा होती है। अगर समय समयपर इस तरहकी सूचना निकालते जायं तो आशा की जाती है कि इस बीमारीके शिकार होनेवालोंकी संख्यामें बहुत कुछ कमी हो जाय, एक बात सदा स्मरण रखनेके योग्य है। वर्तमान समयमें हमारी जो दशा है उसके अनुसार हम मर्यादा भंग और निन्दासे बचनेके लिये जितना किसी बुरे कामसे दूर रहते हैं और अच्छे काममें शामिल होते

हैं उतना और किसीसे नहीं। इसलिये सदाचार और धर्मके नामपर जो लोग आत्मसंयम करनेके लिये न भी तैयार होंगे वे इस चेतावनीपर अवश्य सतर्क हो जायंगे और अपनी रक्षा करेंगे। इसलिये इस बातके प्रचारकी नितान्त आवश्यकता है। घर घर यह सन्देश पहुंचाया जाना चाहिये कि इस तरह कामके फेरमें पड़कर अपने हाथों अपना सर्वनाश किस तरह किया जा सकता है और हमें पूर्ण आशा है कि इसका फल बहुत ही अच्छा होगा।

इस तरह किसी एकको कलंक या अपयश और निन्दासे बचानेके लिये असल बातको छिपा रखनेका यह समय नहीं है। अगर हम ऐसा करते हैं तो नवयुवकोंके नाशके भीषण पापके भागी बनते हैं। आवश्यकता इसी बातकी है कि सब बातें स्पष्ट स्पष्ट कह दी जायं, प्रत्येक व्यक्तिको सच्ची घटना सुना दी जाय और उसे समयसे पहले ही चेतावनी दे दी जाय। गरमी आदि बीमारियोंसे हमें उसी तरह परहेज करना चाहिये जिस तरह हम कोढ़ आदि बीमारियोंसे करते हैं। जिस तरह कोढ़ीको हम अपने पास बैठाना पसन्द नहीं करते, उससे संसर्ग रखना नहीं चाहते, उसका छुआ जल या अ । ग्रहण करना नहीं चाहते वैसा ही हमें गरमीके रोगसे ग्रसित मनुष्यके साथ करना चाहिये। यह भी छूतकी बीमारी है। पर इसका पता पाना बड़ा ही कठिन काम है। आपका हज.।न इस दूषित रोगसे पीड़ित है पर आपको इसका पता नहीं। वह रोज यथासमय आकर

आपकी हजामत करता रहता है और अपने संसर्गसे आपको दूषित करता चला जा रहा है पर आपको इसका पता नहीं। इस तरह धीरे धीरे आप भी वही विष पीते चले जारहे हैं और कुछ कालके बाद आप भी उसी बीमारीके शिकार बनते जाते हैं। इसलिये आवश्यकता इस बातकी है कि ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे समाजसे ही यह बीमारी सदाके लिये लुप्त हो जाय और इसका कोई नाम न ले।

अठारहवां विचार

शरीर यन्त्र

यह शरीर क्या है ? यह भी एक प्रकारका यंत्र है। यदि किसी वैज्ञानिकके पास जाकर हम इसकी क्रियाकी बात पूछें और उसे समझनेकी चेष्टा करें तो हमें मालूम हो जायगा कि वास्तवमें यह मशीन ही है। जिस तरह समयपर ठीक ठीक कोयला पानी देनेसे मशीन चलती रहती है उसी तरह समयपर उपयुक्त दाना पानी देनेसे यह शरीर भी अपना काम करता रहता है। ईश्वरने यह यन्त्र हमें इसलिये दिया है कि हम इसे अपने पास यत्नसे रखें, इसकी सदा देख रेख करते रहें और उसको ठीक रखनेकी फिकर करते रहें और जबतक जीवित रहें इससे काम लेते रहें।

इस शरीररूपी यन्त्रको ईश्वरने हमें दिया है। प्रत्येक मशीनोंको वह समान नहीं बनाता और न बना सकता है। छोटी बड़ी, मजबूत, कमजोर, खूबसूरत बदसूरत सभी तरहकी मशीनें वह बनाता है। किसी मशीनको संचालक—मन, हृदय, मस्तिष्कको वह बहुत ही उत्तम देता है और किसीको खराब। इस तरह कर्मके अनुसार वह अनेक तरहकी मशीनें तैयार करता है।

शरीररूपी यन्त्रको आप अपनी आंखों देखकर भी यह नहीं

कह सकते कि इसकी बनावट कैसी है ! इसके रगरेशे कमजोर हैं या मजबूत। आज यह जिस तरहकी है, दश, बीस या तीस वर्ष बाद भी उनकी वही अवस्था रहेगी। हमारे इस कथनका यह कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने शरीरका प्रयोग ठीक एक ही तरहसे नहीं करते। कितने लोग अपने शरीरका प्रयोग बड़ी सावधानीसे करते हैं और कितने लोग ऐसे हैं जो इसकी जरा भी परवा नही करते कि इसपर किसी तरहका असर पड़ सकता है और मनमाना प्रयोग करते हैं। प्रयोगके अनुसार ही शरीर रूपी यन्त्र अच्छा या बुरा बना रह सकता है। अगर हम अपने शरीरका प्रयोग सम्हल कर, सावधानीसे करते हैं तो हम उससे अन्त समय तक उसी प्रकार काम लेते रहेंगे और वह क्षीण नहीं होगा। पर यदि हम अपने शरीरका प्रयोग असावधानीसे करते हैं तो वह नष्ट हो जायगा और हम उससे बहुत दिनतक काम नहीं ले सकेंगे। हम देखते हैं कि हमारे पडोसीका लड़का अभी केवल २५ वर्षका है पर उसका शरीर जीर्ण शीर्ण हो गया है। उसकी कमर झुक गई है,आंखें धंस गयी है, पेट सिमट गया है, छातीकी पसलियां नजर आती हैं, गाल-की हड्डियां उभर आयी हैं, वह अनेक बीमारियोंका शिकार हो रहा है, उसे देख देखकर घृणा उत्पन्न हो जाती है। इसका क्या कारण है ? जिसने उसे कभी नहीं देखा था वह तो यही कह सकता है कि ईश्वरने इसे इसी तरहका शरीर दिया था और वह उसी शरीरको लेकर अपनी जीवनयात्रा कर रहा है। पर

वास्तवमें यह बात नहीं है। जिसने उसे पन्द्रह या सोलह वर्षकी अवस्थामें देखा होगा वह इस तरहकी बातें नहीं कह सकता। उस समय उसका शरीर जितना हृष्ट पुष्ट था, इस समय कल्पना तक नहीं किया जा सकता। उसके अंग अंगसे वीर रस टपक रहा था। मनुष्योचित रूप उसमें विद्यमान था। उसके शरीरको देखकर प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें उसी तरहका शरीर पानेकी लालसा उत्पन्न हो सकती थी पर इस दश वर्षके भीतर क्याका क्या हो गया। उसने जितना अत्याचार संभव था इस शरीरके साथ किया, इसे हर तरहसे सताया, कष्ट दिया, गलाया, इसका दुरुपयोग किया, ठीक समयपर इसे चारा पानी नहीं दिया, जिस पथपर जी चाहा इसे ले गया। उसका फल यह निकला कि आज माथेपर हाथ रखकर वह विलख विलख कर रो रहा है और अपने कियेपर पछता रहा है। पर "अब पछताके क्या करो, जब चिड़िया चुंग गई खेत।"

एक बात यह भी देखनेमें आयी है कि जिस मनुष्यका शरीर जितना अच्छा बलिष्ठ और हृष्ट-पुष्ट रहता है वह उसकी ओरसे उतनी ही लापरवाही दिखाता है। जिस किसी काममें उसका जी चाहता है वह उसे जोत देता है। इसकी परवा नहीं करता कि इसका क्या परिणाम होगा। कमजोर आदमी सदा फूंक फूंककर कदम रखता है। एक एक पगपर उसे आफत विपतका भय रहता है। वह डरा करता है कि कहीं किसी ओरसे विपत्ति न आपड़े। इसलिये वह कोई काम बिना समझे बूझे नहीं करता।

इसका क्या कारण है ? एक देहाती कहावत है कि 'बड़े घरका ठीकरा भी बिकेगा तो सौ लाख ले मरेगा।' इसीके आधारपर यह सब उत्पात होता है। जो लोग इस तरहसे अपने शरीरका दुरुपयोग करते हैं उन्हें अपने शरीरका अभिमान रहता है और उसी अभिमानके फेरमें पड़कर वह इस तरहकी असावधानी दिखाते हैं। वे कहते हैं, सींकका तो यह शरीर बना नहीं है कि हवा लगनेसे टूट गया या उड़ जायगा। किसीसे मांगकर तो लाये नहीं हैं कि अगर टूट फूट जायगा तो जवाब देना होगा। इसी दिनके लिये तो इसे पाला पोसा और मजबूत किया। आज मोर्चेका दिन आया तो पीछा दिखावें। नहीं यह नहीं हो सकता। यह तो नाशवान है ही, आज नहीं तो कल इसका अन्त होना है। यह अनेक व्याधियोंका खजाना है। कलही अनेक तरहकी बाधियां उत्पन्न होकर इसे खा जा सकती हैं। फिर हम इसके लिये इतनी अधिक चिन्ता क्यों करें।

पर नीतिका वचन है "अति सर्वत्र वर्जयेत्।" अर्थात् अतिका परिणाम सदा बुरा होता है। किसी हदतक तो सब बात सुहाती है पर उसके आगे बढ़नेका परिणाम सदा खराब होता है। यही बात इस शरीरके सम्बन्धमें भी है। किसी हद-तक तो यह बरदाश्त करता जायगा, पर एक समय वह आवेगा जब उत्पीड़न इसे भी असह्य हो जायगा और विषम परिणाम निकलेगा। हाड़-मांसका बना यह पुतला है, अपनी मर्यादाके

बाहर यह कोई बात नहीं बरदाश्त कर सकता। इसलिये जितना अधिक अत्याचार आप इसके साथ करगे उतना ही अधिक यातना यह आपको देगा।

हमारे इस कथनपर कितने नवयुवक हंसेंगे कि यह पागलों-का प्रलाप है या मतवालेकी बहक है। पर नहीं, जो हम लिख रहे,हैं वह अक्षरशः सत्य है। इसका पता अभी आपको नही मिल सकता। जरा जाकर बड़े बूढ़ोसे पूछिये। जिन्हें सत्तर वर्षसे अधिक जीनेका सौभाग्य प्राप्त होता है उनसे जाकर बात कीजिये और पूछिये कि आपने अपनी जवानीमें इस शरीरका उपयोग किस तरह किया था और इसका फल आपको किस तरह मिल रहा है। आपके ही अड़ोसपड़ोसमे हरतरहके आदमी दिखायी देंगे। कोई चालीस पैंतालीस वर्षकी आयुमें ही इतना जीर्ण-शीर्ण हो जाता है कि उसे चलना फिरना मोहाल हो जाता है। नेत्र ज्योतिहीन हो जाते हैं, दांत टूटकर गिर जाते हैं, हाथ पैर काबूमें नहीं रहते। शरीरमें कपकपी आ जाती है। चमड़ेमें शिकन पड़ जाती है। बाल सनकी भांति सफेद हो जाते हैं। कमर झुककर सलामी लेने लगती है। बैशाखीके बिना चलना फिरना असम्भव हो जाता है। पर कितने ऐसे भी देखनेमें आते हैं जो सत्तर पचहत्तर वर्षकी अवस्थामें भी गिद्धकी दृष्टि रखते हैं, खड़ा चना चबानेका ताव रखते हैं और अगर एक झापड़ कसकर किसीको रसीद कर दें तो उसे छट्ठीका दूध याद आने लगे। दस मील पैदल चल फिर आना उनके लिये कोई कठिन

काम नहीं। उनकी विचारशक्ति उसी तरह ताजी और हरीभरी रही है। इन दो उदाहरणोंसे साफ है कि पहले तो उन्होंने बडी लापरवाहीसे अपने शरीरका प्रयोग किया है पर दूसरेने बड़ी सावधानीसे काम लिया है और उसीके अनुसार दोनों इस समय फल भोग रहे हैं। इससे हम इस परिणाम पर पहुंचे कि इस शरीरका हम जिस तरह प्रयोग करेंगे उसी तरह यह हमा-री सेवा कर सकेगी।

तो सबसे पहली आवश्यकता हमें इस बातकी प्रतीत होती है कि हम अपने शरीररूपी मशीनको अच्छी अवस्थामें रखें। इसे किसी भी तरह खराब न होने दें। इसके लिये हमें किसी असाधारण प्रयासकी आवश्यकता नहीं है। इस कामको हम अतिसहजमें पूरा कर सकते हैं। हमें खान, पान, सोचविचार आचरण आदिमें अपनी आत्माकी प्रेरणाके अनुसार चलना चाहिये। आत्माकी प्रेरणाके प्रतिकूल हमें कोई काम नहीं करना चाहिये। अगर हमारी आत्माकी प्रेरणा किसी कामके करनेकी ओर होती हे तो हमें वह काम करना चाहिये। अगर हमारी आत्माकी प्रेरणा किसी कामसे हमें रोकती है तो हमें उस कामके नजदीक नहीं जाना चाहिये, चाहे हमें उससे कितना भारी लाभ क्यों न दीखता हो।

पर यह काम इतना सहज नहीं है जितना सहज पढने या सुननेमें मालूम होता है। हमारा सुख दुःख, जीना मरना, उत्थान,पतन, शुभ, अशुभ सब कुछ आत्माकी प्रेरणापर निर्भर है

अर्थात् हमारी आत्माका हमारे कर्मेन्द्रियोंपर अनुशासन होगा। इसके लिये हमें उसी तरहकी आत्मा भी चाहिये। अगर हमारी आत्मा उन्नत नहीं है और कलुषित विचारोंसे गिर गई है वह हमें सदा कुमार्गमें ले आनेका यत्न करेगी। इसलिये सच्चरित्र रहकर हमें अपनी आत्माको उच्च बनाना चाहिये। जो मनुष्य इस तरहसे अपना जीवन बितानेका संकल्प करेगा फिर उसे इस जीवनमें कभी भी आपदाओंका सामना नहीं करना पड़ेगा क्योंकि वह वही काम करता है जिसकी ओर उसकी आत्मा उसे ले जाती है और अपनी आत्माको उसने इतना सच्चरित्र बना रखा है कि वह कुत्सित मार्गका अनुसरण नहीं करती।

उन्नीसवां विचार
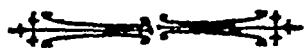
शारीरिक बीमारियां

अभी हालकी बात है एक मित्रसे बात-चीत हो रही थी। बातोंहीमें उन्होंने कहा "आजकल हमारे देशमें नित नये अखबार निकल रहे हैं और भिन्न भिन्न उद्देश्य लेकर चलते हैं पर उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं निकला जो सामाजिक प्रश्नको लेकर चलता। बिना किसी संकोच या लज्जाके समाजकी बुराइयोंका वर्णन करता और यह दिखलाता कि इनके कारण समाजका कितना पतन हो हरा है। इस तरहके समाचारपत्रकी नितान्त आवश्यकता है। पर साथ ही इस कामको उठाकर चलनेवालेके मार्गमें अनेक तरहकी कठिनाई और बाधाएं हैं। बदनामी है नाम नहीं है क्योंकि समाजकी निन्दा लेकर जो चलेगा समाज उसे सही सलामत नहीं रहने दे सकते और अन्तमें यह प्रश्न बड़ाही नाजुक है क्योंकि इस तरहकी बातें लिखना बेशर्मी और बेपर्दगी कहेंगे। आजतक इस तरहका एक भी पत्र नहीं निकला जो इतना झंझट या विपत्ति स्वीकार कर समाजको वर्तमान दुरवस्थासे खींचकर बाहर लावे।"

इन शब्दोंपर विचार करके देखिये तो आपको विदित हो जायगा कि उपरोक्त कथनमें कितना सार भरा है। हम राजनैतिक

उद्धारकी डफली पीट पीटकर नाचते और गाते हैं पर क्या हमने एक बार भी इस बातपर विचार किया है कि जो हमारे स्वराज्यके साथ होंगे उनकी क्या दशा है, जिनके कल्याणके लिये हम स्वराज्यकी खोजमें हैं उनकी क्या दशा हो रही है। चरित्रदोषके कारण उत्पन्न हुई बीमारियां समाजको किस तरह अपना ग्रास बनाती और निगलती चली जा रही हैं। वर्त-मान समाजमें कितने लोग ऐसे हैं जो इन्द्रियोंके सुख और आनन्दके लिये अपना सर्वनाश कर रहे हैं और साथही अपनी सन्ततिका नाश कर रहे हैं।यह बात स्मरण रखना है कि चरित्र-दोषके कारण मनुष्य जिन बीमारियोंका शिकार बन जाता है उससे वह अपना तो सर्वनाश करता ही है उसकी सन्तानें भी उसके इस पापका फल भोगती हैं क्योंकि अकाल मृत्यु पागल-पन, लकवा, गर्भपात और आंखोंका चलाजाना सभी वीर्यके दोषसे होता है अर्थात् जिस व्यक्तिने अपनी कुकरनीसे अपना वीर्य दूषित कर डाला है उसकी सन्ततिको इन सब बीमा-रियोंके होनेका सदा भय बना रहता है।

इसके पहले परिच्छेदमें हम लिख आये हैं कि यह बतलाना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है कि इस बीमारीके कितने शिकार होते हैं क्योंकि इसकी ठीक रिपोर्ट नहीं लिखी जाती। इसलिये अगर विचारवान लोगोंके मनमे इस तरहकी बीमा-रियोंके उपायोंको रोकनेकी अति चिन्ता हो जाती है और समय समयपर वे अपनी उस चिन्ताको कार्य रूपमें परिणत करना चाहते हैं तो आश्चर्य ही क्या है।

पर इसके निवारणका उपाय क्या है ? हमारी समझमें तो एक ही युक्ति सूझ पड़ती है और हम उसीका दिग्दर्शन कराते हैं। समाचारपत्रोंद्वारा लोगोंको इन बीमारियोंकी बुराई दिखायी जाय और साथ ही उनके मनपर इस बातका प्रभाव डाला जाय कि इस बीमारीसे कल्याणकी यदि किसी तरहसे संभावना है तो वह केवल पवित्र जीवनसे हो सकता है अर्थात् जबतक मनुष्य पूर्ण परहेजके साथ नहीं रहेगा और अपने आचरणपर पूर्ण अधिकार नहीं रखेगा, तबतक उसके उद्धारकी संभावना नहीं। इसकी सत्यता दिखलानेके लिये उदाहरणोंकी कमी नहीं है। उनके अड़ोस-पड़ोस और आस-पासमें ही अनेक कुटुम्ब ऐसे दिखलायी देंगे जो अपनी इन्द्रियों-को पूरी तरहसे वशमें रखते हैं और उसका आनन्द और सुख भोगते हैं। अगर प्रत्येक व्यक्ति अपना आचरण सुधार ले तो समाज इस तरहकी विनाशकारी बीमारियोंसे सदाके लिये मुक्त हो जाय और समाजका कल्याण हो।

इसलिये समाजके कल्याणकी कामना है तो वह एक ही उपायसे सिद्ध हो सकती है। हम अपने नवयुवकोंके सामने पवित्र जीवनका आदर्श रखें, उन्हें उसका मूल्य बतावें और चरित्रदोषके कारण उत्पन्न हुई बीमारियोंका भयानक चित्र उनके सामने रखें। पर क्या इससे भी सहज कोई उपाय है ? हमारी समझमें तो हमें अपने मुंहपरसे मोहर तोड़ देनी चाहिये। खुली तौरसे लोगोंकी दृष्टि इन बीमारियोंकी ओर आकृष्ट करना

चाहिये और इससे समाजका जो नाश हो रहा है उसका दिग्द-र्शन भी कराना चाहिये। अभीतक हमलोग जो परदा रखते आये हैं उससे भी अपकार ही हुआ है। समाचार-पत्रोंको, सभा सोसा इटियोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये। इसकी बुराईकी खुली घोषणा करनी चाहिये और साथ ही अभिभावकोंको विना किसी संकोचके अपनी सन्ततिको समझा देना चाहिये कि किस मार्गपर जानेसे उन्हें क्या फल मिलेगा और सदा इस बातपर कड़ी निगाह रखनी चाहिये कि संसारका अनुभव प्राप्त करनेके लिये वे बुरे मार्गका अनुसरण नहीं करते। एक बात और है। बालकालसे ही बच्चोंके आचरणपर ध्यान देना चाहिये। ऐसे दास-दासियोंके हाथमें उन्हें कभी भी नहीं सौंप देना चाहिये जो उन्हें कुमार्गमें ले जायं अथवा जो उनमें बुरी आदतें डाल दें तथा बुरी शिक्षा दें। बच्चोंके सामने अभिभा-वकोंका व्यवहार भी बहुत ही स्वच्छ और निर्मल होना चाहिये। गन्दी बाते मुँहपर नहीं लानी चाहिये। गन्दे ख्यालात हृदयमें नहीं लाने चाहिये, नहीं तो उस ख्यालातसे गन्दी हुई हवा बाहर निकलकर समस्त हवाको दूषित कर देगी और जो कोई उसे छूएगा, वही दूषित हो जायगा। इस तरह एक साथ ही दोनोंका सुधार होता जायगा। लड़कोंके हाथमें सुन्दर सुन्दर पुस्तकें देनी चाहिये, जिनमें वीर पुरुषों और महात्माओं-की तस्वीरें बनी हों, सुन्दर सुन्दर फूल बने हों और नीति-के दो चार सुन्दर शब्द लिखे हों। इससे बालकालसे ही बच्चों-का चरित्र पुनीत होता जायगा।

हममें कुछ लोग निराशावादी हैं। उन्हें चारों ओर निराशा ही निराशा दिखायी देती है। वे कहते हैं, यह कलियुग है। इसमें पापका प्रचार होना ही है। पापकी दिनोंदिन चढ़ती होगी। लोग अनेक तरहके कुकर्म करेंगे। सुधार आदिकी बातें व्यर्थ हैं। इससे कुछ होना जाना नहीं है। उन लोगोंसे हमें यह कहना है कि क्या आपने कभी इसके लिये कुछ प्रयास करके देखा है कि इसका क्या फल निकलता है? क्या आपने अपनी सन्ततिपर इस तरहके शासनका प्रयोग करके देखा है कि आपको सफलता नहीं मिलती है। हम समझते हैं हममेंसे बहुत कम लोगोंने इस बातका प्रयास किया है। हम तो इस बातको दावेसे कह सकते हैं कि अगर हमारे समाजके प्रत्येक व्यक्ति इसी उपरोक्त निर्धारित मार्गसे चलना आरम्भ कर दें तो हमारी सन्ततिका सुधार सहजमें ही हो सकता है। अभिभावकोंको झूठी शर्म और स्वार्थपरतासे उदासीन नहीं रहना चाहिये। उन्हें अनवरत परिश्रमकर बालकोंको इस बातकी शिक्षा देनी चाहिये कि आत्मशासनसे ही आचरण पवित्र रह सकता है और इसीसे समाजका कल्याण हो सकता है। इसी तरह माताओंको भी सङ्कोच छोड़कर अपनी बेटियोंको सीधीसादी भाषामें समझा देना चाहिये कि वर्त्तमान समाज किस तरह कुटिल हो रहा है और उनके पतनके लिये कहां कहां गड्ढे खोदे गये हैं और किस तरह चलकर वे उन गड्ढोंमें गिरनेसे अपनेको बचा

सकती हैं। अवस्था और प्रकृतिके अनुसार मनुष्यमें भेद पड़ता है और इसे भी समझ लेना होगा। पर समाजको इससे कोई मतलब नहीं। इस तरहकी बातोंपर विचार करनेका भार समाजके ही हाथमें छोड़ देना चाहिये। हम लोगोंको सिर्फ प्रधान सूत्र लेकर आगे बढ़ना चाहिये और प्रत्येक नवयुवकको इस बातकी शिक्षा देनी चाहिये कि सच्चरित्रता केवल शरीरको ही सुख नहीं देती, बल्कि यह सबसे उत्तम तथा पुनीत गुण है और समाजमें मनुष्यको सबसे अधिक उपयुक्त बनाती है। मानव-समाजको गिरनेसे बचानेके लिये इससे बढ़कर कोई उपाय नहीं है।

बीसवां विचार

पथभ्रष्टकी दुर्दशा

एक समयकी बात है, हमें एक सभामें प्रतिदिन व्याख्यान देने जाना पड़ता था। सभाके प्रवेशद्वारपर मोटे मोटे अक्षरोंमे लिखकर निम्नलिखित वाक्य टंगा था, "जिसने नीतिका अनुसरण करना छोड़ दिया-और पथभ्रष्ट हो गया, उसके भाग्यमें विपत्तियां भोगना ही लिखा है; फिर उसे इस संसारमें सुख नहीं मिल सकता।" यह वाक्य ठीक फाटकपर लटकाया गया था। इससे जो लोग वहांपर आते थे—चाहे वे दर्शक हों, श्रोता हों अथवा उपदेशक हों—वह सबको उंगली उठाकर चेतावनी देता था और सतर्क करता था। एक दिनकी बात है कि एक दर्शकने हमारे पास आकर कहा, महाशय! आपने उस टंगे हुए वाक्यको गौरसे देखा है? मेरी समझमें तो यह उचित नहीं प्रतीत होता। फाटकपर इस तरह इसे लटका देनेका अभिप्राय यही हुआ कि इसका लक्ष्य यहां आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिपर है, चाहे वह किसी हैसियत और किसी अवस्थाका क्यों न हो। इससे कुछ लोगोंको क्षोभ उत्पन्न हो सकता है और वे इससे बुरा मान

सकते हैं। हमने कहा—"आपका कहना ठीक है। मैंने भी इस-पर विचार किया है और इसी परिणामपर पहुंचा हूं। पर भाई एक बात है। क्या ये शब्द अक्षरशः सच नहीं हैं? क्या लेखकने इस वाक्यको लिखनेमें कहीं भी अतिशयो-क्तिसे काम लिया है? नहीं। जो कुछ उसने लिखा है. सच लिखा है। हम लोग इस समय जिस अवस्थामें पहुंचे हैं, वहां इसी तरह चलनेसे काम बन सकता है। खुशाम-दियोंकी खुशामदभरी बातें सुनते सुनते तो हम लोग इस अवस्थातक पहुंचे, अपना सर्वनाश किया। क्या अब भी वही इच्छा बनी है? क्या अब भी शहद लिपटा हुआ शराबका प्याला ही मुंहमें लगानेका जी चाहता है? क्या अब भी आप-की आंखें नहीं खुलीं हैं ? क्या अब भी वही इच्छा अवशेष है? आप जानते ही हैं कि सत्य सदा कड़वा होता है। "हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः" हित और मीठी बातें विरले ही कहने-वाले मिलेंगे। और "करुई औषधि बिन पिये मिटै न तन-को ताप" इसलिये हमें सत्यको ही अपनाना होगा और अपनाना चाहिये, चाहे वह कितना भी कड़वा क्यों न हो।

धर्मशास्त्रों और नीतिशास्त्रोंके ग्रन्थोंको उलटकर देखिये। उन्होंने भी यही बात लिखी है। उन्होंने पथभ्रष्टको सबसे बड़ा अभागा बतलाया है। जिन महापुरुषोंने इन ग्रन्थोंकी रचना की है, उन्होंने मनुष्यके जीवनकी समस्याका पूरी तरहसे अध्ययन ·· है और तब कहीं कलम चलानेका साहस किया है।

अगर आप भी इसकी सत्यताकी जांच करना चाहते हैं तो संसारमें घूमकर देखिये, आपको यही बात दिखायी देगी। इसमें जरा भी फर्क नहीं पड़ सकता।

हम एक चौराहेपर खड़े हैं। किसी एक मार्गसे होकर हमें आगे बढ़ना है। चौराहेपर चारों मार्गका पूरा हवाला चार तख्तियोंमें लटका दिया गया है। उस हवालेको पढ़कर हम एक ओर बढ़ते हैं। इससे यही अभिप्राय निकला कि शेष तीन रास्तोंसे हमने सदाके लिये मुंह मोड़ लिया। जिस रास्तेको हमने पसन्द किया, उसका सुख-दुःख हमारे पल्ले उसी तरहसे पड़ेगा, जिस तरहसे सूर्यके पल्ले यह पृथ्वी पड़ी है। जिस तरह वह सूर्य्यका पीछा नहीं छोड़ सकती, उसी तरह वह भी हमारा पिण्ड नहीं छोड़ सकता। इसीको कहते हैं 'जैसी करनी वैसी भरनी' अर्थात् धूलको ठुकराकर गर्दसे बचनेकी कल्पना करना व्यर्थ है। अगर हम कुमार्गका अनुसरण करते हैं तो निश्चय है कि हम संकटमें पड़ेंगे और उसका फल हमें हर तरहसे भोगना पड़ेगा। यह अनिवार्य है। इसे कोई शक्ति नहीं रोक सकती और न यह किसीके रोके रुक सकता है। ईश्वरकी आंखोंमें धूल नहीं झोंक सकते। वह तो प्रतिक्षण कड़ी निगाहसे हममेंसे प्रत्येकके आचरणका निरीक्षण किया करता है और जहां कहीं वह हममें त्रुटि देखता है, वहीं ठोकर लगाता है। एक मुसलमान था। रोजेके दिनोंमें वह नदीमें नहाने जाया

करता था और डुबकी लगाकर जलके भीतर जाकर पानी पी लिया करता था और हंस हंसकर अपने साथियोंसे कहा करता था; ऐसा काम करना चाहिये जिसे अल्लामियां भी न देख सकें। एक दिन जब हजरतने डुबकी मारकर पानी पीनेके लिये मुंह खोला तो एक मछली गलेमें अटक गयी। अब तो मियांजीका दम घुटने लगा। अल्ला! तौबा! करते उतराये। साथियोंने बाहर निकाला और किसी न किसी तरह मछली निकालकर उनके प्राण बचाये। पूछनेपर उन्होंने अपनी चोरी कह सुनायी। कहिये! क्या मियांजीकी चोरी छिप सकी? संसारकी आंखोंमें भले ही धूल झोंक लो, पर उस परम पिताकी आंखोंमें धूल नहीं झोंक सकते। तुम्हारा सामर्थ्य नहीं कि तुम उसे ठग सको। वहां घूस और रिश्वत भी नहीं चलती, खुशामद और चापलूसी भी नहीं चलती। वहां तो जैसा करोगे, वैसा ही फल पावोगे, यह अनिवार्य है।

यह संसार भलेमानुसोंके लिये बनाया गया है, भलेमानुसोंद्वारा बनाया गया है और भलमनसाहतके लिये बनाया गया है। इसलिये इस संसारमें रहनेके वे ही लोग अधिकारी हैं जो भलेमानस हैं, भलमनसीके नियमको मानते हैं और उसके अनुसार चलनेके लिये तैयार हैं। सदाचार और चरित्रके नियम उसी तरह कड़े हैं, जिस तरह गुरुत्वाकर्षणके नियम कड़े और कठोर हैं। जिस तरह गुरुत्वाकर्षणके नियममें

विकल्प नहीं है, उसी तरह सदाचारके नियमोंमें विकल्प नहीं है। गुरुत्वाकर्षण उन लोगोंकी पूरी तरह रक्षा करता है, जो उसके नियमोंको मानकर चलते हैं, पर जो लोग उसकी उपेक्षा करते हैं अथवा अवज्ञा करते हैं, उनका वह वहीं अन्त कर देता है। इस तरह पीस देता है कि उसका कहीं पता नहीं मिलता। चाहे तुम अपनेको कितने ही चतुर, धूर्त या चालबाज क्यों न समझते हो, ईश्वरके सामने तुम्हारी एक नहीं चल सकती। ईश्वरने ही दोनोंकी रचना की है। सदाचारके नियमोंपर उसीकी मुहर है और गुरुत्वाकर्षण-का वही विधायक है। दोनोंको उसने समान रूप दिया है। जिस तरह एकमें किसी तरहका विकल्प या भेद संभव नहीं है, उसी तरह दूसरेमें भी विकल्प या भेद नहीं रह सकता।

अगर हम हृदयसे चाहते हैं कि हमारा भविष्य सदा उज्वल और प्रकाशमय रहे तो हमें अपना वर्तमान भी शुद्ध और उज्ज्वल रखना चाहिये। हमारे वर्त्तमान आचरणकी छाया हमारे भविष्य-जीवनपर अवश्य पड़ेगी। अगर हमने आज इस आशापर किसी तरहका पापाचरण किया कि कल ही हम अच्छी अच्छी दवाओंके प्रयोगसे उसका नाश कर डालेंगे तो हम भूल कर रहे हैं। पापको धोनेके लिये दवायें नहीं हैं। अभीतक तो इतना सुयोग्य कोई भी डाकृर नहीं निकला, जो पापको धो डालनेकी दवा निकाल सके। अगर तुमने रास्ता छोड़ दिया है और गलत मार्गपर जा रहे हो तो तुम्हारे पैरमें

अवश्य कांटे गड़ेंगे। तुम अपनेको किसी तरह नहीं बचा सकते। ईश्वरसे तुम्हारी खैंचातानी नहीं चल सकती। तुम उसकी आंखोंमें धूल झोंककर उसे धोखा नहीं दे सकते। अगर तुमने उसके नियमोंकी अवज्ञा की है, उसके कानूनको तोड़ा है तो वह अपने राज्यमेंसे अवश्य निकाल देगा, तुम्हें दण्ड देकर दूसरोंके लिये वह अवश्य आदर्श खड़ा करेगा। अपने राज्यमें चोर, बदमाश, डाकू, और नीचोंको बसाकर वह अपने शासनकी मर्यादा नहीं बिगाड़ सकता। उसने बदमाशों और लुच्चोंको आश्रय देनेके लिये इतना भीषण प्रयास नहीं किया है।

वह इतना प्रयास उठा रहा है कि वह अपनी आंखों देखे कि उसकी खेती हरी भरी है। उसमें एक भी मुरझाया फूल नहीं है। कोई भी पौधा पीला नहीं पड़ गया है। अपने जाति-धर्मके अनुसार सभी ठीक समयपर नियत कानूनके अनुसार फूल और फल रहे हैं। उसकी प्रजामें कोई भी उद्धत या उद्दंड नहीं है, विचारहीन नहीं है, उच्छृङ्खल नहीं है, धर्मभ्रष्ट नहीं है। वह चाहता है कि हमने जितने पौधे लगाये हैं, सब आपसमें गलेसे मिलें और प्रेमसे रहें।

इसलिये हमारा परम कर्त्तव्य यही है कि हम सदा नेक-चलनीसे इस संसारकी यात्रा समाप्त करें और सबकी भलाई किया करें। पर यदि अकारण हमसे भलाई या उपकार नहीं होता तो हमें इस बातके लिये सदा सावधान रहना चाहिये कि

हम किसीकी बुराई अथवा अपकार नहीं करते। .हमें प्रति-क्षण यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि जोः—

"ईश्वरके नियमोंका उल्लंघन करता है, उसकी बुरी गति होती है।"

इक्कीसवां विचार

ईश्वरके दरबारमें भेदभाव नहीं

धर्मशास्त्रोंमें हर तरहके पापोंके लिये दण्ड-विधान लिखा है। किसी धर्मग्रन्थकारका मत देखिये, आपको दिखायी देगा कि उसने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि अमुक पाप करनेसे अमुक फल मिलेगा। और जितने स्पष्ट शब्दोंमें उन लोगोंने चरित्र-भ्रष्टताका दण्ड-विधान किया है और किसीका नहीं किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि जिसका चरित्र खोटा है, उसे कड़ासे कड़ा दण्ड दिया जाना चाहिये। चोरी और जीव-हत्यासे भी इस पापको भयानक बतलाया है और इसकी निन्दा की है। उन्होंने लिखा है कि यह आग है, जिसे हम देखते नहीं, पर जिसने इसका आलिंगन किया, उसे यह इस तरह चबा जाती है कि उसका पता नहीं चलता। धर्मग्रंथोंमें इस तरहके पापके लिये प्राणदण्डका विधान था। इनका समाजमें रहना ही समाजके लिये आपत्तिजनक समझा जाता था। इसलिये समाजके अन्दरसे इनका अस्तित्व मिटा देना ही उचित समझा गया था। जो इस तरहका पाप करता है। वह अपनी आत्मा-को खराब करता है, शरीरका नाश करता है और अपना इहलोक तथा परलोक दोनों नसाता है।

हम जिस शरीरका अभिमान करते हैं, जिसे अपना कहकर पुकारते है, वह हमारा नहीं है। उसपर हमारा किसी तरहका अधिकार नहीं है। वह लीलामय भगवानकी आधार-भूमि है। इसी निमित्त उस लीलामय परम पिताने इसकी रचना की है। यह परम पवित्र मन्दिर है, जिसमें आत्मारूपसे परमेश्वरने अपनी प्रतिमाकी स्थापना की है। यह शरीर उसी प्रतिमाके प्रतिष्ठानके लिये बना है। अगर हम किसी तरहका पाप करते हैं तो हम उसके पवित्र मन्दिरको कलुषित करते हैं और शैतानके रहनेका घर बनाते हैं। जहां पाप है, शुद्धता नहीं है, वहां ईश्वरकी पवित्र छाया नहीं रह सकती। शैतानके लिये वह जगह छोड़ दी गयी है और वह उसको ग्रस लेता है। जहां उसकी सवारी हुई, फिर आत्माका दिन प्रतिदिन पतन होता जाता है। और वह इस तरह गिर जाती है कि उसका उत्थान संभव नहीं।

चरित्रदोष अपना नाश तो करता ही है, साथ ही वंशका नाश भी कर डालता है और दाम्पत्य जीवनमें विषवृक्ष पैदा कर देता है। हम कई बार बतला चुके हैं कि इस अवनीतलमें यदि कोई सबसे शान्त और परम पवित्र स्थान है तो वह गृह है और हृदयको पूर्ण शान्ति देनेवाली, निराशामें भी प्रकाश करनेवाली, शून्य हृदयमें ज्योति-शिखा जलानेवाली गृह-देवी है। पर जब हम अपने आचरणको भ्रष्ट करते हैं तो इन दोनोंपर सीधा प्रहार करते हैं। घरमें फूट और कलह मच जाती

है, गृहस्वामिनीके हृदयमें डाह और ईर्ष्या पैदा हो जाती है। चरित्रहीन सबकी निगाहोंसे उतर जाता है कोई उसका विश्वास नहीं करता। उसे सब लोग गृहस्थीके लिये भार-रूप समझने लगते हैं। गृहस्वामिनी उसे इस तरह गिरा देख अतिशय खिन्न होती है और वह उसके (गृहस्वामिनीके) हृदय-रूपी खजानेको खो देता है। चाहे जीवनकी कोई भी अवस्था क्यों न हो, जब कभी यह रोग लग जायगा यह सर्वनाश उप-स्थित कर देगा। वर्त्तमान समयमें समाजका नाश करने-वाला इससे बढ़कर कोई दूसरा रोग नहीं है। पाप सभी बुरे होते हैं, मनुष्यका सिर सभी पापोंसे नीचा हो जाता है, उसे किसीके सामने आंखे उठाकर देखनेका साहस नहीं रह जाता। पर चरित्रहीनकी गणना सबसे नीचेकी श्रेणीमें है। यह आत्माको नष्ट कर देता है, हृदयको पत्थर बना देता है और शरीरको मिट्टीमें मिला देता है। समाजके अन्तर्गत जितनी बुराइयां, हैं उनमें इसका नाम सबसे प्रथम आता है। प्रकृति भी ऐसे व्यक्तिको नहीं छोड़ती। अपना कड़ा चाबुक उसकी पीठपर तड़से जमा ही देती है। जो व्यक्ति सदाचारके नियमोंका इस तरह उल्लङ्घन करता है और कुत्सित मार्गपर चलता है, उसको प्रकृति इतना कड़ा दण्ड देती है कि वह उससे मुक्त नहीं हो सकता अर्थात् वह आत्माको शून्य बना देती है और उसके शरीरपर बाहरी आवरणको सड़ा गलाकर बेकाम कर देती है।

इस संबंधमें एक वात और जान लेनी चाहिये। समाजकी वर्त्तमान अवस्था जिस तरह विगड़ गयी है, उसमें इस तरहके पाप कर्ममें भी पक्षपातकी शून्यता नहीं देखनेमें आती। समाजने स्त्रियों और पुरुषोंके आचरणमें भेद लगा दिया है। अगर पुरुष कुकर्म करता है तो उसका अपराध इतना भयानक नहीं समझा जाता। समाज उसे किसी तरहका दण्ड देनेकी आवश्यकता नहीं समझता। सब लोग जानते हैं कि अमुक व्यक्ति इस आचरणमें फँस गया है और दूरतक सफर कर गया है, पर उसकी कोई आलोचनातक नहीं करता, समाज या जातिसे उसे निकालकर वाहर कर देना तो दूरकी वात रही। सव वातें जानते हुए भी लोग उसी तपाक और आदरके साथ उससे मिलते जुलते हैं और उसकी प्रतिष्ठा करते हैं। यहांतक कि जो लोग समाजसुधारक वनते हैं और वड़े वड़े प्लैटफार्मोंपर खड़े होकर गला फाड़ फाड़कर चिल्लाते हैं और चरित्रहीनताकी निन्दा करते हैं, वे भी व्यवहारमें किसी तरहका भेदभाव नहीं दिखलाते और उन्हीं लोगोंसे हाथ मिलाते हैं, जिनकी निन्दाका उन्हें पुल वांध देना चाहिये। फिर उसके इष्टमित्रों और वन्धु वान्धवोंकी वातोंका क्या कहना है। वे लोग तो केवल इतनेसे ही सन्तोष कर लेते हैं। वह जवानीके जोशमें आकर अपना भला-बुरा नहीं समझ रहा है और अपने नाशका मार्ग तैयार कर रहा है। पर विशेष डरकी वात नहीं है, क्योंकि जवानीका जोश है। यह वलवला अधिक दिनतक नहीं रह सकता। जिस दिन

यह वलवला दूर हुआ, आप ही आप उसका सुधार हो जायगा। इसलिये विशेष चिन्ताकी आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग तो यहांतक कहनेके लिये तैयार रहते हैं कि जिस मनुष्यने इस तरफ कदम नहीं बढ़ाया, वह "आदर्श पति" नहीं हो सकता। मानों आदर्श बननेके लिये प्रत्येक व्यक्तिको इस शिक्षाभवनमें जाकर अध्ययन करना चाहिये। कहनेका मतलब यह है कि अगर पुरुष सदाचारके प्रतिकूल जाता है, अपने चरित्रको कलङ्कित करता है तो भी लोग उसे बुरा नहीं कहते। क्या यही व्यवहार स्त्रियोंकी ओर भी है? नहीं, स्त्रियोंके नामपर लोग तिलका ताल करनेके लिये तैयार रहते हैं। अगर कहींसे किसीके कानमें जरा भी भनक पड़ गयी कि अमुक स्त्रीके चरित्रमें दोष है तो उस प्रसङ्गको लेकर लोग लड़ मरेंगे, समाजसे वह निकाल दी जायगी, उसके नामपर अनेक तरहके अपवाद उठेंगे। इस अवनीतलपर उसे ठौर नहीं मिलेगा। वह हर तरफसे दुतकारी जायगी। पिता, माता, भाई, वन्धु कोई भी उसके साथी नहीं होंगे। उसे घरसे निकाल देंगे। चाहे उसका चरित्र कैसा भी शुभ्र क्यों न रहा हो, चाहे उन्होंने उसकी परीक्षा ही क्यों न की हो, पर इस अपवादके सामने वे कुछ नहीं सुनेंगे। यही कहकर घरसे बाहर कर देंगे "दुष्टे! तूने पूर्वजोंकी उज्ज्वल कीर्त्तिको कलङ्कित करनेका साहस किया है। तू इस घरसे निकल जा। फिर हम लोगोंको अपना काला मुंह मत दिखलाना।" तरह तरहके अयश उसके मत्थे

मढ़े जायंगे। सभी उसकी मृत्युकी कामना करेंगे। उस विचारी अवलाकी तो यह दुर्दशा होगी, पर उसको इस कुमार्ग-में लानेवाला पुरुप स्वच्छन्द विचरण कर सकता है। उसको कोई कुछ नही कहता। जो लोग विचारी उस अवलापर इतना भीपण और कठोर प्रहार करते हैं, वे ही उस पुरुपसे हाथ मिलाते हैं मानों उसने कुछ किया ही नहीं है। जिस माता-पिताने अभागिनी कन्याके जरासे अपराधपर उसे घरसे बाहर कर दिया है, वही पिता अपनी आंखों देखता है कि उसका कपूत पूत कितने घरोंको घाल रहा है, उनका नाश कर रहा है। वह जितना भारी पाप और अनर्थ कर रहा है, उतना कदा-चित् उस विचारी कन्याने नहीं किया था। पर इस लाड़लेकी उसी तरह प्रतिष्ठा है, मर्यादा है, इसे कोई बुरा नहीं कहता। न तो कोई उसे सजा देता है और न वह घरसे निकाला जाता है। यह सामाजिक विपमता है, घोर अन्याय है, जिसका विषम फल हम लोग भोग रहे हैं। पर ईश्वरके दरबारमें इस तरहकी अस-मानता और अन्याय नहीं देखनेमें आते। उसके कानून सबके लिये बराबर हैं, चाहे वह पुरुप हो या स्त्री, नर हो या नारी। उसके यहां सबके लिये एक कानून है और उसीके अनुसार वह सबकी जांच करता है। जिसने उसके नियमका उल्लंघन किया, उसे वह दण्ड देता है। इस बातमें संसारके सभी धर्म एकमत हैं, किसीका विरोध नहीं है। सनातन धर्म यही कहता है, ईसाई-मत यही कहता है, इस्लाम यही बताता है और यहूदीधर्म भी यही शिक्षा देता है।

हम इस बातको स्वीकार करते हैं कि स्त्रियोंमें इस तरहकी दुश्चरित्रता समाजके लिये बहुत ही हानिकर है। वह गार्हस्थ्य जीवनको विषमय बना देती है, वह दाम्पत्य स्नेहमें विष बो देती है और मातृत्वपर कुठाराघात करती है। साथ ही स्त्रियोंमें जितनी सरलता और कोमलता है, सबका नाश करती है। पर पुरुषकी दुश्चरित्रता इससे कम नहीं है। इसकी मात्रा भी उतनी ही भीषण और कठोर है। ईश्वर इसमें किसी तरहका भेद नहीं मानता। हमें दोनोंके लिये सदा एक तरह सतर्क और सावधान रहना चाहिये। यह मनुष्यकी स्वार्थपरता और कुटिलता है, जो इस तरहके भेदभावका जिम्मेदार है। हम सदा यही चाहते हैं कि हमारी मातायें, बहिनें और बेटियां सच्चरित्रा रहें, कुमार्गमें कदम न रखें; अपना आचरण न बिगाड़ें। तो क्या हमारी मातायें, बहिनें और बेटियां इस बातकी चाहना नहीं कर सकतीं कि हमारे पुत्र, भाई और पिता कुमार्गगामी न हों, अपने चरित्रपर धब्बा न लगावें। एक वर्गसे हम जिस बातकी आशा करते हैं, दूसरे वर्गसे भी उसी बातकी आशा क्यों न करें? अगर पति कुमार्गगामी है और हृदयसे चाहता है कि उसकी स्त्री सच्चरित्रा बनी रहे तो उसकी भूल है। स्वयं कुमार्गमें जाकर वह अपनी स्त्रीको कुमार्गमें जानेकी शिक्षा दे रहा है और उसका नष्ट होना स्वाभाविक है। अगर हम चाहते हैं कि हमारी पत्नीका आचरण सदा शुद्ध और उज्वल बना रहे तो हमें उचित है कि हम अपने चरित्रको

सदा उज्वल और कलङ्कहीन बनावें। पुरुष होनेसे ही किसी तरहका विशिष्ट अधिकार हमें प्राप्त नही है। जो स्त्रीके लिये पाप है, वह पुरुषके लिये भी उतना ही पाप है और ईश्वरके दरबारमें एकका जिस तरह विचार होगा दूसरेका भी उसी तरह विचार होगा।

धर्मशास्त्रोका मनन करके देखिये तो यही तत्व निकलेगा। साधारण बुद्धिसे काम लीजिये तो यही बात सत्य प्रतीत होगी। कुपथगामी होकर पुरुष, जितना भारी पाप करता है, स्त्री भी उतना ही भारी पाप करती है। अगर आप एकको समाजसे निकालनेका साहस करते हैं तो आपको दूसरेके साथ भी उसी तरहका व्यवहार करना चाहिये। अगर आप एकके साथ रिआयत करके उसे समाजके अन्दर रख लेते हैं और यह आशा करते हैं कि समाजका शासन इसे सुधार देगा तो आप दूसरेके साथ इससे भिन्न व्यवहार क्यों करते हैं? उसे भी उसी समाजके अन्दर रखिये और उसी तरह समाजके शासनद्वारा उसे भी सुधारिये। दोनोंकी एक प्रकृति है, फिर क्या कारण कि एक सुधर सकता है और दूसरा नहीं। जो द्वार आपने एकके लिये मुक्त कर रखा है, वह द्वार दूसरेके लिये भी खुला रहना चाहिये।

बाईसवां विचार

दुराचरणका फल

एक नवयुवक घाटके किनारे खड़ा देख रहा है कि अनेक युवक—जो उसीके समान बल, वीर्य और पराक्रममें हैं—उस नदीमें कूद रहे हैं और विलीन होते जा रहे हैं। नदीकी मझ-धारमें अपना विकराल मुंह फैलाये एक व्याल बैठा है और जो उधरसे होकर आगे बढ़ना चाहता है, उसे पकड़कर निगल जाता है। यह नवयुवक थोड़ी देरतक बैठा देखता रहता है, फिर नदीमें कूद पड़ता है। क्यों? वह सोचता है कि मैं इससे अपनी रक्षा कर लूंगा। इस व्यालकी आंखोंमें धूल झोंककर उस पार हो जाऊंगा और अपने शरीरपर ताप नहीं आने दूंगा। ठीक यही हालत हमारी रहती है। जिस समय हम पापकी ओर बढ़ते हैं, अन्तरात्मा हमें उधर पैर रखनेसे रोकती है। वह हमें अंगुलियां उठा उठाकर उन लोगोंको दिख-लाती है, जो इस मार्गपर गये और विलीन हो गये और हमें चेतावनी देती है कि हमारी भी यही दुर्दशा होगी। पर हम इस बातका ख्याल नहीं करते। हम यही सोचते हैं कि किसी न किसी चालसे हम अपनी रक्षा कर ही लेंगे। हम देखते हैं कि हमारे अन्य साथी इस तरहका मलिन जीवन व्यतीतकर

अनेक तरहकी विपत्तियां भोगते हैं, पर हम उस मार्गमें यही सोचकर कदम रखते हैं कि उसे डाक जायंगे और कीचड़में अपना कदम नहीं फँसने देंगे। इसी आशा और विश्वासपर हम आगे बढ़ते जाते हैं और अन्तमें वही लोहेकी बेड़ी हमारे कदममें भी आकर पड़ जाती है और हम फँस जाते हैं।

हम देखते हैं कि पापका फल मृत्यु है। यही सदासे होता आया है और होता रहेगा। इसमे किसी तरहका फर्क नहीं पड़ सकता। लोग कहते हैं कि जबतक मनुष्य हर तरहका जीवन व्यतीत नहीं कर लेता, जीवनके सभी उपकरणोंका—चाहे वे अच्छे हों या बुरे—भोग नहीं कर लेता, तबतक वह पूर्णताको नहीं प्राप्त हो सकता। पर इस मन्तव्यका आरम्भ ही गलत और भ्रमपूर्ण आधार लेकर हुआ है। भला इस तरहकी धृष्टता कौन करेगा कि वह एक अच्छे बहुमूल्य रत्न-को गर्दीली जमीनपर रगड़े और कहे कि इससे इसका सौन्दर्य बढ़ता जा रहा है।

अगर हम लोग इस संसारमें किसी बातसे सबसे अधिक हानि उठाते हैं तो वह असद्जीवन है। इससे हमारी जो हानि होती है, उसकी हम तुलना नहीं कर सकते। लोग समझते हैं कि बुरी आदत डाल लेना आसान है, पर अच्छी आदत मुश्किल-से डाली जा सकती है। पर विचारकर देखिये तो मालूम होगा कि बात एकदम उलटी है। बुरी आदत डालना सहज नहीं है। जब कभी हम पहले पहल किसी बुरे कामकी ओर

झुकते हैं, प्रकृति इसका विरोध करती है, अन्तरात्मा इसके विरुद्ध युद्धके लिये खड़ी हो जाती है। इन दोनोंसे घोर संग्राम-कर बुराईको अपना पल्ला मजबूत करना पड़ता है।

एक नवयुवक किसी पापकी ओर कदम बढ़ाये चला जा रहा है। इन्द्रियोंके सुखने उसे पागल बना दिया है। वह अपने मनमें कहता है, हम मानते हैं कि इससे थोड़ी खराबी उत्पन्न हो सकती है पर जितना आनन्द मिलेगा उसके सामने यह हानि कोई बहुत नहीं है। पर कुछ कालके बाद उसे मालूम होगा कि उसका अनुमान कितना भ्रमपूर्ण है। वह किस तरह धोखा खा रहा है। जिस समय उसे मालूम होगा कि इस तरहके विलास करनेका जो मूल्य उसने दिया है वह आजीवन नहीं कमाया जा सकता, उस समय उसे मालूम होगा कि उसने कैसा धोखा खाया है। वह समझे बैठा था कि इसमें कुछ थोड़ी हानि उठानी पड़ेगी। पर अब वह देखता है कि उसके जीवन-का सार खिंचा चला जा रहा है। वह निःसत्व हुआ चला जा रहा है। उसकी सारी शक्तियां क्षीण होती चली जा रही हैं। शरीरके प्रत्येक कल-पुर्जे शिथिल होते चले जा रहे हैं। इससे अधिक मूल्य वह और क्या दे सकता है!

यह शरीररूपी मशीन सब मशीनोंसे नाजुक है। इसके कल-पुर्जे बड़े ही महीन बनाये गये हैं। यही इस शरीररूपी मशीनकी विशेषता है। जो वस्तु जितनी नाजुक होती है, उसे उतनी ही हिफाजतसे रखते हैं। नहीं तो बाहरी गर्द और मैल पड़नेसे

उसमें खराबी आ जायगी। फिर वह चल नहीं सकेगी और बेकार हो जायगी। ईश्वरने मनुष्यके हाथमें इस शरीरको इसीलिये सौंपा कि वह अत्यन्त सावधानीसे काम ले। सदा इस बातका ध्यान रखे कि यह मशीन बिगड़ने नहीं पाती। किसी भी तरह बाहरी गर्द उड़कर उसपर नहीं पड़ने पाती।

टाइपराइटर चलानेवालेकी ओर देखिये। वह कितनी होशियारीसे काम लेता है। कामके अवसरके अतिरिक्त वह क्षणभरके लिये भी मशीनको खुली नहीं रहने देता, क्योंकि वह जानता है कि यह मशीन इतनी नाजुक है कि जरासी असावधानीमें उसके कल-पुर्जे में खराबी आ सकती है और वह बेकाम हो जा सकती है। इसीलिये वह बाहरी आवरण बड़ी सावधानीसे रखता है और कामके बाद मशीनको सदा ही ढँककर रखता है।

इसी तरह विज्ञान-भवनमें सावधानी की जाती है।। संचालक भलीभांति जानता है कि ये पुर्जे इतने नाजुक हैं कि साधारण विपरीत अवस्थासे इनमें खराबी उत्पन्न हो सकती है। इसलिये वह उनके रखनेमें बड़ी सावधानी दिखलाता है, बड़ी हिफाजतसे रखता है। छोटीसे छोटी चीजके लिये खोली बनवाकर रखता है, जिससे बाहरकी चीजोंका उसपर जरा भी असर न पड़ सके।

क्या हमारा शरीर इन सब बेजान मशीनोंसे भी अधिक नाजुक नहीं है? उनके कल-पुर्जे तो मनुष्यके हाथके बनाये

हैं, फिर भी बना लिये जायंगे। बिगड़नेपर उनकी मरम्मत भी हो सकती है। उनके स्थानमें दूसरे पुर्जे भी लगाये जा सकते हैं। पर यह शरीर ईश्वर-निर्मित है। इसकी मरम्मत मनुष्यके हाथसे बाहरकी बात है। अगर इसके छोटे-मोटे पुर्जे भी बिगड़ गये तो वे फिर सुधर नही सकेंगे। जबतक इस शरीरकी अवधि है तबतक वे उसी बिगड़ी दशामें रहेंगे। फिर कब संभव है कि बिगड़े पुर्जोंसे संयुक्त यह मशीन एक क्षण भी ठीक तरहसे अपना काम कर सकेगी ?

इतना होते हुए भी हम चेतते नहीं। क्षणभरके लिये भी हम इन परिणामोंपर विचार नहीं करते और पूरी लापरवाहीके साथ—मानों इस शरीरका कुछ बिगड़ ही नहीं सकता—इसका प्रयोग करते हैं। इसकी रक्षाका यत्न करना तो दूर रहा, इसे लापरवाहीके साथ जहां-तहां भिड़ा देते हैं। और चारोंओरके वायुमण्डलका मनचाहा असर पड़ने देते हैं।

हमें तो इस बातका अभिमानसा हो गया है कि हम संसार-की आंखोंमें धूल झोंकनेमें बड़े ही चतुर हैं। किसीको झांसा-पट्टी पढ़ाना तो हमारे बायें हाथका खेल है। जब हम संसारको धोखा देकर अपना काम बना लेते हैं तो मूक प्रकृतिको धोखा देते क्या लगता है। कभी कभी लोग अभिमानके साथ कहते भी सुनाई देते हैं कि हमने एक बार नहीं सौ बार प्रकृतिके कानूनों-की अवहेलना की है। हम उसकी क्या परवा करते हैं। क्या वहां भी सिपाहीका पहरा है जो हमें पकड़कर हवालातमें बन्द

कर देगा। पर यह सरासर भूल है। प्रकृतिकी दृष्टि इतनी दिव्य है, उसकी तेज निगाहें इतनी दूरतक जाती हैं कि उनसे छिपाकर कोई काम किया ही नहीं जा सकता। गाढ़ अन्धकारमें भी वे देख लेती हैं। उनके नियमोंको तोड़नेवाला हवालातमें तो नही वन्द किया जाता पर उसे उसका फल तत्काल भोगना पड़ता है। राज्यनियमो और प्रकृतिके नियमोंमें यही अन्तर है। राज्यके नियमोंको तोड़कर भी हम वच सकते हैं क्योंकि राजाको यह सावित कर दिखलाना पड़ता है कि इसने नियम तोड़े हैं, पर प्रकृतिके नियमको तोड़नेवाला सदा ही पकड़ लिया जाता है और उसे तत्काल दण्ड मिलता है; वल्कि यों कहिये कि दण्ड ही उसकी गिरफ्तारी है। कहनेका मतलव यह है कि हम प्रकृतिके नियमोंको नही तोड़ते, वल्कि प्रकृति—यदि हम उसके नियमोंको तोड़ते हैं—हमें ही तोड़ डालती है।

कोई कोई मनुष्य यह भी देखते हैं कि उन्होंने प्रकृतिके नियमोकी अवज्ञा तो की, पर उन्हें उसका तत्काल फल नहीं मिला। इससे वे यह सोचने लग जाते हैं कि प्रकृति क्या दण्ड देगी। पर उनकी यह कल्पना निर्मूल है। जिस दिन हम कोई हेय काम करते हैं, गन्दी वासनाओंके शिकार वन जाते हैं, उसी दिनसे हमें अपने शरीरपर वीतनेवाली घटनाओंका पर्यवेक्षण करना चाहिये। उसी दिन हमने सट्टा लिख दिया और अपना हाथ कटा लिया। उस अपराधके लिये प्रकृति हमें उसी दिनसे दण्ड

देना आरम्भ कर देती हैं। हमें यह नहीं पता लगता कि उस दण्डका क्या रूप है, पर वह हमारे ऊपर गहरा पड़ता है। अनेक तरहकी शारीरिक बीमारियां क्या हैं। उसी अवज्ञाका फल है। हमे उस अपराधके लिये पूरी तरहसे दण्ड भुगतना पड़ेगा, चाहे देरमें या जल्दी। यही प्रकृतिका नियम है और दुराचरणका यही फल है।

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी माला

स्थायी ग्राहकोंके लिये नियम—

१—प्रत्येक व्यक्ति ।।/ आने प्रवेश-शुल्क जमाकर इस मालाका स्थायी ग्राहक बन सकता है। उक्त ।।/ लौटाये नहीं जायंगे।

२—स्थायी ग्राहकोंको मालाकी प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक पौन मूल्यमें मिल सकेगी। एकसे अधिक प्रतिया पौन मूल्यमें मगा सकेंगे।

३—पूर्व प्रकाशित पुस्तकोंके लेने न लेनेका पूर्ण अधिकार स्थायी ग्राहकोंको होगा, पर सालभरमें जितनी पुस्तकें प्रकाशित होंगी, उनमेंसे कमसे कम ६/ रु० की पुस्तकें प्रति वर्ष अवश्य लेनी होंगी।

४—पुस्तक प्रकाशित होते ही उसकी सूचना स्थायी ग्राहकोंके पास भेज दी जाती है। स्वीकृति मिलनेपर पुस्तक वी० पी० द्वारा सेवामें भेजी जाती है। जो ग्राहक वी० पी० नहीं छुड़ावेंगे उनका नाम स्थायी ग्राहकोंकी श्रेणीसे काट दिया जायगा। यदि उन्होंने वी० पी० न छुड़ानेका यथेष्ट कारण बतलाया और वी० पी० खर्च (दोनों ओरका) देना स्वीकार किया तो उनका नाम ग्राहक श्रेणीमें पुन: लिख लिया जायगा।

५—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी मालाके स्थायी ग्राहकोंको मालाकी नव-प्रकाशित पुस्तकोंके साथ- अन्य प्रकाशकोंकी कमसे कम १०/ रु० की लागतकी पुस्तकें भी पौन मूल्यमें दी जायगी, जिनकी नामावली हर नव-प्रकाशित पुस्तककी सूचनाके साथ भेजी जाती है।

६—हमारा वर्ष विक्रमीय सवत्से आरम्भ होता है।

मालाकी विशेषतायें

१—सभी विषयोंपर सुयोग्य लेखकों द्वारा पुस्तकें लिखायी जाती हैं।

२—वर्तमान समयके उपयोगी विषयोंपर अधिक ध्यान दिया जाता है।

३—मौलिक पुस्तकें ही प्रकाशित करनेकी अधिक चेष्टा की जाती है।

४—पुस्तकोंको सुलभ और सर्वोपयोगी बनानेके लिये कमसे कम मूल्य रखनेका प्रयत्न किया जाता है।

५—गम्भीर और रुचिकर विषय ही मालाको सुशोभित करते हैं।

६—स्थायी साहित्यके प्रकाशनका ही उद्योग किया जाता है।

३३—प्रेम-पचीसी

ले० उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

प्रेमचन्दजीका नाम ऐसा कौन साहित्य-प्रेमी है जो न जानता हो। जिस प्रेमाश्रमकी धूम दैनिक और मासिक पत्रोंमें प्रायः बारह महीनेसे मची हुई है उसी प्रेमाश्रमके लेखक बाबू प्रेमचन्दजीकी रचनाओंमेंसे एक यह भी है। 'प्रेमाश्रम', 'सप्त सरोज','प्रेम पूर्णिमा' और 'सेवासदन' आदि उपन्यासों और कहानियोंका जिसने रसास्वादन किया है वह तो इसे विना पढे रह ही नहीं सकता। इसमें शिक्षाप्रद मनोरञ्जक २५ अनूठी कहानिया हैं। प्रत्येक कहानी अपने अपने ढङ्गकी निराली है। कोई मनोरञ्जन करती है, तो कोई सामाजिक कुरीतियोंका चित्र चित्रण करती है। कोई कहानी ऐसी नहीं है जो धार्मिक अथवा नैतिक प्रकाश न डालती हो। पढनेमें इतना मन लगता है कि कितना भी चिन्तित कोई क्यों न हो प्रफुल्लित हो जाता है। भाषा बहुत सरल है। विद्यार्थियोंके पढने योग्य है। ३८४ पृ० की पुस्तकका खद्दरकी जिल्द सहित मूल्य २।)—रेशमी जिल्दका २॥)

३४—व्यावहारिक पत्र-बोध

ले० पं० लक्ष्मणप्रसाद चतुर्वेदी

आजकलकी अग्रेजी शिक्षामें सबसे बड़ा दोष यह है कि प्राय अंग्रेजी शिक्षित व्यवहार-कुशल नहीं होते। कितने तो शुद्ध बाकायदा पत्र लिखनातक नहीं जानते। उसी अभावकी पूर्तिके लिये यह पुस्तक निकाली गयी है। व्यापारिक पत्रोंका लिखना, पत्रोंका उत्तर देना, प्रार्थनापत्रोंका बाकायदा लिखना तथा आफिसियल पत्रोंका जवाब देना आदि दैनिक जीवनमें काम आनेवाली बातें इस पुस्तकद्वारा सहज ही सीखी जा सकती हैं। व्यापारिक विद्यालयों (Commercial Schools) की पाठ्य-पुस्तकोंमें रहने लायक यह पुस्तक है। अन्यान्य विद्यालयोंमें भी यदि पढ़ायी जाय तो लडकोंका बड़ा उपकार हो। विद्यार्थियोंके सुभीतेके लिये ही लगभग १२५ पृ० की पुस्तककी कीमत ॥=) रखी गयी है।

३५—रूसका पञ्चायती-राज्य

ले० प्रोफेसर प्राणनाथ विद्यालंकार

जिस वोल्शेविज्मकी धूम इस समय संसारमें मची-हुई है, जिन बोल्शेविकोंका नाम सुनकर सारा यूरोप काप रहा है उसीका यह इतिहास है। जारके अत्याचारोंसे पीड़ित प्रजा जारको गद्दीसे हटानेमें कैसे समर्थ हुई, मजदूर और किसानोंने किस प्रकार जार-शाहीको उलटनेमें काम किया, आज उनकी क्या दशा है इत्यादि बातें जाननेको कौन उत्सुक नहीं है? प्रजातन्त्र-राज्यकी महत्ताका बहुत ही सुन्दर वर्णन है। प्रजाकी मर्जी बिना राज्य नहीं चल सकता और रूस ऐसा प्रबल राष्ट्र भी उलट दिया जा सकता है, अत्याचार और अन्यायका फल सदा बुरा होता है इत्यादि बातें बड़े सरल और नवीन तरीकेसे लिखीं गयी हैं। लेनिनकी बुद्धिमत्ता और कार्यशैली पढ़कर दातों तले अँगुली दबानी पड़ती है। किस कठिनता और अध्यवसायसे उसने रूसमें पचायती राज्य स्थापित किया इसका विवरण पढकर मुर्दा दिल भी हाथों उछलने लगता है। १३६ पृ० की पुस्तकका मूल्य केवल ॥ℓ मात्र रखा गया है।

३६—टालस्टायकी कहानियां

स० श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

यह महात्मा टाल्स्टायकी ससार-प्रसिद्ध कहानियोंका हिन्दी अनुवाद है। युरोपकी कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसमें इनका अनुवाद न हो गया हो। इन कहानियोंके जोडकी कहानिया सिवा उपनिषदोंके और कहीं नहीं हैं। इनकी भाषा जितनी सरल, भाव उतने ही गम्भीर हैं। इनका सर्वप्रधान गुण यह है कि ये सर्व-प्रिय हैं। धार्मिक और नैतिक भाव कूट कूटकर भरे हैं। विद्यालयोंमें छात्रोंको यदि पढ़ाई जायँ तो उनका बड़ा उपकार हो। किसानोंको भी इनके पाठसे बड़ा लाभ होगा। पहले भी कहींसे इनका अनुवाद निकला था परन्तु सर्वप्रिय न होनेके कारण उपन्यास सम्राट् श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी द्वारा सम्पादित कराकर निकाली गयी हैं। सर्वसाधारणके हाथोंतक यह पुस्तक पहुच जाय इसीलिये मूल्य केवल १ℓ रक्खा गया है।